वर्षः 41, अंकः 5, सितंबर-अक्टूबर, 2018

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

मैं जी भर जिया मैं मन से मरूं
लौटकर आऊंगा कूच से क्यों डरूं

अटल बिहारी वाजपेयी
25 दिसंबर 1924 – 16 अगस्त 2018

गगनांचल

सितंबर-अक्टूबर, 2018

प्रकाशक

रीवा गांगुली दास

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली

संपादक

डॉ. हरीश नवल

सहायक संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

ISSN : 0971-1430

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002

ई-मेल: **spdawards.iccr@gov.in**

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों और फोटोग्राफ्स की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

शुल्क दर

वार्षिक	:		₹ 500
		यू.एस.	$ 100
त्रैवार्षिक	:		₹ 1200
		यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : इमेज इंडिया, नई दिल्ली-110002
9953906256

अनुक्रम

हिंदी विमर्श

सम्मान संस्कार की भाषा
डॉ. रमा 5

हिंदी को वैश्विक रूप प्रदान करने वाले विदेशी हिंदी विद्वान
डॉ. जवाहर कर्नावट 8

ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण के सांस्कृतिक आयाम
तरूण कुमार 10

हिंदी भाषा आस्था एवं अपेक्षा
सुरेश सक्सेना 14

हिंदी की भाषिक संस्कृति: शिक्षण के विविध आयाम
प्रो. वशिनी शर्मा 17

जयंती संदर्भ

महात्मा गाँधी और आधुनिक हिंदी कविता
भारत यायावर 20

हिंदी निबंध के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
सीताराम पाण्डेय 23

हिंदी के अनन्य साधक फादर कामिल बुल्के
डॉ. विभा खरे 27

शिक्षक दिवस

संस्कार व नैतिकता के बिना शिक्षा अर्थहीन
कंचन शर्मा 29

व्यक्तित्व

भिखारी ठाकुर: भोजपुरी रंगमंच के शेक्सपियर
अंशु त्रिपाठी 'अनुजा' 32

समालाप

साक्षात् डॉ. रामदरश मिश्र
आरती स्मित 36

अन्य विशेष

लेखकों की दुनिया अजब गजब
सूरज प्रकाश 42

पंजाब आतंकवाद के वे दिन
कमलेश भारतीय 45

कथाक्रम

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में जन्मी एक प्रेम कहानी
सुधांशु गुप्त 47

किराए का कमरा
गीता डोगरा 51

राइट टु एजुकेशन
सुमन बाजपेयी 56

उपन्यास अंश

होटल में छापा
अरविंद तिवारी 60

लघुकथा

तीन लघु कथाएँ
किशनलाल शर्मा 64

दुर्गा पूजा
डॉ. शोभा अग्रवाल 'चिलबिल' 65

सुनील गज्जाणी की दो लघु कथाएँ 66

गेट सम्राट
अशोक भाटिया 68

काव्यनिधि

जरा ठहरो
डॉ. सुरेश अवस्थी 69

राष्ट्रभाषा हिंदी
प्रो. शरद नारायण खरे 70

सच पर चलना
हरीष कुमार अमित 71

मौन
योगेंद्र वर्मा 'व्योम' 71

निर्देश निधि की तीन कविताएँ 72

कविता विकास की तीन कविताएँ 73

प्रेम बिहारी मिश्र की दो कविताएँ 74

बादल
गरिमा चारण 75

संधियों के पल
राधेश्याम 'बंधु' 76

वासंती दोहे
रामबहादुर चौधरी 'चंदन' 76

दो दृश्य
ख्याल खन्ना 77

अमलतास पर चिड़िया
शिव डोयले 77

व्यंग्य

भला करने वाले
वीरेन्द्र 'सरल' 78

'मोगेम्बो खुश हुआ'
मीना अरोड़ा 80

पुस्तकं समर्पयामि
शोभना श्याम 83

समीक्षा ग्राम

रणविजय कृत 'दर्द माँजता है'
गिरीश पंकज 85

सुकेश साहनी, रामेश्वर काम्बोज संपादित 'लघुकथाएँ मेरी पसंद-2'
डॉ. शिवजी श्रीवास्तव 87

आयोजन

मॉरीशस में विश्व हिंदी
डॉ. रवि शर्मा 'मधुप' 90

अंततोगत्वा

वह कौन थी
हरीश नवल 95

प्रकाशकीय

रीवा गांगुली दास
महानिदेशक

प्रिय पाठकवृंद,

'गगनांचल' को प्रकाशित होते हुए चार दशक से अधिक हो गए हैं। यह आपके कारण ही यह संभव हो सका है।

आपकी अमूल्य प्रतिक्रियाएं हमारी मार्गदर्शक हैं। ऐसे ही आप मार्ग दिखाते रहेंगे, यह अपेक्षित है।

'गगनांचल' का पूर्व अंक एक विशेषांक था जिसमें केवल भारतीय संस्कृति विषयक लेख थे जिनकी संख्या चवालीस थी। यह अंक विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के लिए एक सार्थक उपहार सिद्ध हो रहा है, इससे बहुत संतोष की अनुभूति हुई है। यह विशेषांक मॉरीशस में लोकार्पित हुआ यद्यपि वातावरण श्री अटल बिहारी वाजपेयी के निधन के कारण भावुकतापूर्ण था।

स्वर्गीय श्री वाजपेयी भारतीय राष्ट्र का मूल सांस्कृतिक मानते थे, राजनैतिक नहीं। उस चेतना को नमन। उनका हिंदी प्रेम भी सर्वविदित है।

आइए इस अंक से जुड़ें जिसमें हिंदी और सांस्कृतिक चेतना से संबद्ध कुछ नए भाव बोध आप को मिल सकेंगे।

शुभकामनाएँ,

रीवा दास

संपादकीय

हरीश नवल
संपादक

ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन मॉरीशस में हुआ। यह अब तक का सबसे बड़ा 'विश्व हिंदी सम्मेलन' था किन्तु अवसादपूरित वातावरण में हुआ। 16 अगस्त 2018 को जब मॉरीशस के गंगा तालाब पर आरती समारोह हेतु विश्व भर से आए प्रतिभागी भाग लेने जुट रहे थे तभी भारत के प्रिय नेता 'अटल जी' के निधन का दुखद समाचार मॉरीशस पहुँचा था।

17 अगस्त 2018, सम्मेलन का विधिवत् आरंभ हुआ किन्तु मॉरीशस में भी भारत की भाँति राजकीय शोक के कारण राष्ट्रध्वज आधे झुके हुए थे।

स्व. श्री अटल बिहरी वाजपेयी एक सांस्कृतिक पुरुष थे जिन्होंने राजनीति में राष्ट्र और उसकी महत्ती संस्कृति को जिलाये रखा। मानवीय संवेदनाओं को उन्होंने सदैव सर्वोपरि रखा। वे 'अजातशत्रु' के रूप में जाने जाते हैं। पक्ष विपक्ष सभी का नेह और मान उन्हें प्राप्त हुआ। उनकी वाणी में ओजस्विता और कर्म में तेजिस्वता थी। उनकी वक्तृता से जनमानस अतिशय प्रभावित था।

'गगनांचल' परिवार उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण साहित्यिक रत्न भी हमने हाल ही में खोये है। गीतों के प्रणेता श्री गोपालदास 'नीरज', वीररस के कवि बालकवि वैरागी और कविता को नवस्वर देने वाले श्री विष्णु खरे के प्रति भी 'गगनांचल' श्रद्धासुमन अर्पित करता है।

प्रिय पाठक, 'गगनांचल' का 'भारतीय संस्कृति संदर्भित अंक' बहुत पसंद किया गया है। 'विश्व हिंदी सम्मेलन' में पधारे प्रत्येक प्रतिभागी को इस विशेषांक की प्रति भेंट की गई थी। देश, विदेश से प्राप्त संदेशों में इसे 'संग्रहणीय' कहा गया है। इस अभ्यर्थना के लिए लेखकों, पाठकों, संपादन विभाग और 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद' का बहुत-बहुत आभार।

इस अंक से 'गगनांचल' अब तिथि अनुसार नियमित हो सकेगा, यह विश्वास आपको देते हुए हर्ष है। प्रस्तुत अंक विशेषत: 'हिंदी दिवस', विषयक रचनाएं समेटे हुए हैं। साथ ही 'शिक्षक दिवस', 'गांधी जयंती', 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल जयंती' और 'फादर कमिल बुल्के' जयंती से संबंधित लेख भी इसमे नियोजित हैं।

आशा है विगत की भाँति आपकी प्रतिक्रियाएं अवश्य प्राप्त हो सकेंगी।

सादर अभिवादन

हरीश नवल

सम्मान संस्कार की भाषा

डॉ. रमा

भारत के बाहर बसे प्रवासी साहित्यकारों द्वारा रचा जा रहा साहित्य विपुल मात्रा में सामने आ रहा है और लोग उसे खूब पढ़ भी रहे हैं। प्रवासी भारतीयों के कर कमलों द्वारा हिंदी में विस्तृत साहित्य उपलब्ध है और निरन्तर लिखा जा रहा है। विश्व के डेढ़ सौ से भी अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है।

यह कैसा दुर्भाग्य है कि हम जिस भाषा में अपनी पहचान स्थापित करते हैं और जो हमारे अस्मिता की मूल प्रवृत्ति है, उसी के सामने हमारे द्वारा ही संकट खड़ा हो रहा है। आज हिंदी ऐसी मजबूत भाषा बन चुकी है जिसे दुनिया का प्रत्येक देश अपने-अपने तरीके से व्यावसायिक प्रयोग कर रहा है और हम उसे आज भी पिछड़ी की भाषा माने बैठे हैं।

इक्कीसवीं सदी तकनीकी और संसाधनों से तीव्र परिवर्तनों वाली वैश्विक उपलब्धियों की शताब्दी बन चुकी है। ज्ञान और विज्ञान के नए उपकरणों द्वारा दुनिया वैश्विक गाँव में ढलकर विकास के नए मार्ग प्रशस्त कर रही है। भौगोलिक सीमाएँ टूटकर सिमट गईं हैं। 'घंटों का काम सेकंडों' में हो रहा है। ऐसे में हिंदी की विकासगति अन्य भाषाओं से अधिक हुई है। साहित्य, कला और व्यवसाय के सभी माध्यमों में हिंदी ने अभूतपूर्व उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। किसी भाषा की विशेषताएँ होती हैं जो उसे वैश्विक स्तर पर स्थापित करती हैं। विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

उसके बोलने-जानने, चाहने की संख्या अधिक हो और विश्व के अनेक देशों में फैले हों—

इस दृष्टि से देखें तो हिंदी विश्व की दूसरी भाषा बन चुकी है। विश्व के सभी कोनों में हिंदी बोलने, समझने वालों और उसमें कार्य करने वालों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। आज हिंदी विश्व के लगभग पौने दो सौ देशों में प्रयोग की जा रही है बल्कि बोली जा रही है। प्रामाणिक रूप में हिंदी चीनी भाषा के बाद दूसरी ऐसी भाषा है जिसे बोलने और समझने वाले की संख्या सबसे अधिक है। कुछ सर्वे तो हिंदी को ही विश्व स्तर पर प्रयोग होने वाली पहली भाषा मानते हैं तथा चीनी को दूसरे स्थान पर मानते हैं। आज जो अंग्रेजी बहुत चर्चा में रहती है वह तीसरे नंबर की भाषा है।

वह तकनीकी और विज्ञान की भाषा हो—

हिंदी के साथ थोड़ी समस्या तो है, क्योंकि वह ज्ञान और विज्ञान की भाषा नहीं बन पा रही है। अगर उसे तकनीकी और विज्ञान की भाषा बना दें तो वह विश्व की प्रथम भाषा बन जाएगी।

सम्पर्क: प्राचार्या, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, मलकागंज, दिल्ली-110007

और ऐसी बनेगी कि फिर कोई आगे-पीछे नहीं होगा। हिंदी में विज्ञान तकनीकी संबंधी ग्रंथों, पुस्तकों और शोध-पुस्तकों का अभाव है, जिसे थोड़ी-सी योजना के तहत पूरा किया जा सकता है। हालाँकि इस दिशा में कार्य आरंभ हो चुका है। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग जैसी संस्थाओं ने इस दिशा में कुछ निर्णायक फैसले लिए हैं। इसके अलावा मध्य प्रदेश की अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय में भी विज्ञान और इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए हिंदी की पुस्तकों का प्रयोग किया जा रहा है। विश्वविद्यालय ने इस दिशा में कार्य करते हुए हिंदी विद्वानों की समिति स्थापित कर ऐसी पुस्तकों का निर्माण करवाया है। हिंदी को तकनीकी और व्यवसाय की भाषा बनाने के लिए तेजी से परिवर्तन किए जा रहे हैं और सरकारी/गैरसरकारी संस्था/संस्थाओं द्वारा इस दिशा बड़ी मात्रा में कार्य हो रहा है। ऐसा नहीं है कि हिंदी का संसार उपलब्धियों से खाली है। दरअसल हिंदी विशुद्ध रूप से प्रेम और सौहार्द्र की भाषा रही है, उसे संस्कृति और सभ्यता का संरक्षक माना गया है। इस लिहाज से व्यावसायिक रूप में उसका विकास कम ही किया गया। हिंदी में साहित्य, दर्शन, समाज विज्ञान, भाषा विज्ञान, इतिहास, आध्यात्म की बहुमूल्य पुस्तकों का अंबार है। इस क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष हजारों की संख्या में पुस्तकों का सृजन हो रहा है।

उस भाषा में साहित्य-सृजन की गरिमामयी परंपरा हो और विभिन्न विधाएँ में साहित्य सृजन हो तथा उसकी ख्याति विश्वस्तरीय हो—

हिंदी साहित्य में साहित्य सृजन की गरिमामयी परंपरा रही है। हिंदी साहित्य को मात्र हिंदी भाषा के संदर्भ में देखना बेईमानी होगी। भारतीय भाषाओं में ऐसी पुस्तकों का सृजन हुआ है जो हमारी संस्कृति और अस्मिता के संबल हैं। हम सिर्फ हिंदी साहित्य के इतिहास को उठा कर देखें तो पता चलता है कि यहाँ पर भारतीय समाज और जीवन तथा ऐतिहासिक, पौराणिक पात्रों को आधार बनाकर महत्त्वपूर्ण रचनाओं का सृजन हुआ है। प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य विश्वसाहित्य के लिए चुनौती है। उनके उपन्यास—'सेवासादन' 'गोदान', 'गबन' आदि अपनी संवेदना और शिल्प की विराट अभिव्यक्ति के कारण विश्व की महत्त्वपूर्ण कृतियों में स्थान प्राप्त करते हैं। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी', धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', रामधारी सिंह दिनकर का 'कुरुक्षेत्र', 'उर्वशी', निराला की 'राम की शक्ति पूजा', महादेवी वर्मा की 'स्मृति की रेखाएँ', 'श्रृंखला की कड़ियाँ', 'पथ के साथी' जैसी रचनाओं का महत्व कभी भी कम नहीं हो सकता है। ऐसी पुस्तकों की लंबी सूची हिंदी साहित्य में सुरक्षित है जिसका परिचय देना समीचीन नहीं होगा।

इतना ही नहीं भारत के बाहर बसे प्रवासी साहित्यकारों द्वारा रचा जा रहा साहित्य विपुल मात्रा में सामने आ रहा है और लोग उसे खूब पढ़ भी रहे हैं। प्रवासी भारतीयों के कर कमलों द्वारा हिंदी में विस्तृत साहित्य उपलब्ध है और निरन्तर लिखा जा रहा है। विश्व के डेढ़ सौ से भी अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। प्रवासी हिंदी सेवियों द्वारा वर्तमान में दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्ध वार्षिक, वार्षिक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का निरंतर प्रकाशन हो रहा है। बीसवीं सदी के अन्त तक 150 से अधिक प्रवासी भारतीय विभिन्न विधाओं में साहित्य रचना में संलग्न थे। 21वीं सदी के प्रारम्भ होने तक 50 से अधिक साहित्यकारों की भारत की प्रमुख संस्थाओं व प्रकाशकों द्वारा पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वेब पत्र-पत्रिकाओं का, ब्लाग्स आदि का आरंभ हुआ तो प्रवासी साहित्यकारों को खुला मंच मिल गया व विश्वव्यापी पाठकों तक पहुँचने का ऐसा रास्ता बन गया जिस पर चलकर बड़ी यात्रा तय कर सकते हैं। प्रवासी साहित्य अब बहुत अधिक संपन्न हो चुका है। प्रवासी साहित्यकार भी पूरी तरह स्वतंत्र होकर अलग-अलग विधाओं में साहित्य रचने में सृजनरत हैं। उनके साहित्य को पढ़कर विदेशों के अनेक अनुभवों, भावनाओं, संवेदनाओं से जुड़ सकते हैं। प्रवासी साहित्य पढ़कर यह बात स्पष्ट होती जाती है कि मानवीय संवेदनाएँ देश-काल की सीमाओं से परे होती हैं। 2005 के बाद, अब स्थिति बदल रही है और कुछ सीमा तक बदल चुकी है। प्रवासी हिंदी साहित्य का स्वागत हो रहा है और उनके योगदान को विभिन्न तरीके से सराहा भी जा रहा है उनकी रचनाओं को भारत में लोग पढ़ना चाहते हैं। विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाई हो रही है। प्रवासी साहित्य और ऐसे रचनाकारों पर शोध हो रहे हैं। यही कारण है कि विभिन्न स्थापित-प्रतिष्ठित पत्रिकाओं द्वारा प्रवासी हिंदी साहित्य पर विशेषांक एवं महाविशेषांक प्रकाशित हो रहे हैं। विद्वान डॉ. गोयनका जी ने स्पष्ट किया है कि यह 'आरक्षण कोटे' के अंदर नहीं हो रहा है वरन् वैसे ही हो रहा है जैसे त्रिलोचन, विष्णु प्रभाकर, बच्चन, शिव मंगल सिंह 'सुमन', धनीराम 'प्रेम', तिलका माझी, प्रेमचन्द, निराला आदि पर निकले विशेषांक। प्रवासी हिंदी साहित्य का यह प्रारम्भिक रूप है जो अपनी जड़ें जमा रहा है और शीघ्र ही तथाकथित हिंदी की

मुख्यधारा में अनेकानेक प्रवासी रचनाकारों का समावेश होगा। वे अपने कृतित्व के आधार पर अधिकार सहित उसमें अपनी जगह लेंगे, न कि माँग कर।

प्रवासी साहित्य का आरंभ जिन परिस्थितियों और समय में हुआ वह भारत के इतिहास का काला युग है। जाहिर है निराश मन से लिखा गया साहित्य केवल सहानुभूति और संवेदना का साहित्य होगा, उसमें जीवन के विभिन्न रंगों का अभाव होगा। हिंदी के मुख्यधारा के साहित्यकारों और आलोचकों ने प्रवासी साहित्य की संवेदनात्मक पक्ष को हमेशा हाशिये पर रखा। कई लोगों ने बाकायदा यह मुहिम चलाई कि प्रवासी साहित्य कचरा साहित्य है, ना उसमें विषय है और ना ही भाषा।

21वीं सदी में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रश्नों के बीच ही अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों का भी जन्म हुआ। सोशल मीडिया ने इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। आज फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग्स के माध्यम से प्रचुर मात्रा में प्रवासी साहित्य सामने आ रहा है।

शब्द भंडार—

किसी भी भाषा की ताकत इसी से पता चलती है कि उसके बोलने वालों कि संख्या कितनी है। उसका शब्द भंडार और कितना मजबूत और विस्तृत है। हिंदी की सबसे बड़ी ताकत ही यही है कि उसके पास शब्दों का भंडार है। सभी जानते हैं कि हिंदी की लिपि देवनागरी है। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और सहजता पूरे विश्व के विद्वानों में स्वीकृत हो चुकी है। उसकी अक्षर, शब्द, ध्वनियाँ उच्चारण की सहजता के आधार पर हिंदी विश्व की सभी भाषाओं से सहज और जल्दी समझी जाने वाली भाषा है। विद्वानों ने माना भी है कि ध्वनियों का उच्चारण कर उसे लिपिबद्ध करने की तकनीकी और वैज्ञानिक क्षमता अन्य लिपियों की अपेक्षा देवनागरी लिपि में अधिक है। भारत की विभिन्न भाषाओं संस्कृत, हिंदी, मराठी, सिन्धी, नेपाली आदि की लिपि पूरी तरह से देवनागरी है। इसके अलावा पंजाबी, बांग्ला, गुजराती, कोंकणी आदि की लिपि भी देवनागरी से बहुत मिलती-जुलती है। इतना ही नहीं हिंदी की जो 18 बोलियाँ स्वीकृत की हैं उनके भी अपने शब्द हैं जो हिंदी भाषा के महत्त्वपूर्ण हिस्से हैं। संस्कृत विश्व की सबसे पुरानी जीवित भाषा होने के साथ ही आधुनिक कम्प्युटर की प्रिय भाषा है। उसका भी शब्द भंडार हिंदी में शामिल हो चुका है। इस प्रकार हम देखें तो हिंदी का शब्द भंडार बहुत व्यापक है।

किसी भी भाषा को वैश्विक पहचान दिलाने वाले ये उपर्युक्त कारक हिंदी भाषा में सम्मिलित हैं। हिंदी निर्विवाद रूप से विश्व स्तर की भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। पूरे विश्व में उसके पढ़ने, बोलने और समझने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। साहित्य, कला और अभिव्यक्ति के सबसे सशक्त माध्यम मीडिया द्वारा हिंदी ने लोकप्रियता के नए प्रतिमान स्थापित किए हैं। यह हिंदी का दुर्भाग्य ही है कि उसे कभी बोलियों तो कभी जातियों में बाँट कर उसका मूल्यांकन किया जाता है। अगर सभी एक साथ जुड़ जाएँ तो हिंदी निर्विवाद रूप से विश्व की प्रथम भाषा है।

♦♦♦

व्यंग्य यात्रा एवं बिलासा कला मंच के संयुक्त तत्वावधान में, अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय के सभागार में आयोजित राष्ट्रीय व्यंग्य महोत्सव के उद्घाटन सत्र में बाएं से हरीश पाठक, गिरीश पंकज, अध्यक्ष प्रेम जनमेजय, मुख्य अतिथि डॉ. गौरीदत्त शर्मा, कुलपति धीरेंद्र अस्थाना, और नीलकंठ

हिंदी को वैश्विक रूप प्रदान करने वाले विदेशी हिंदी विद्वान

डॉ. जवाहर कर्नावट

*"हिंदी ज्ञान
मेरे लिए अमृत पान
जितनी बार पीता हूँ
उतनी बार लगता है
पुनः जीता हूँ।"
— आदोलेन स्मेकेल*

हिंदी अपने विविध रूपों में आज न केवल विश्व के अनेक देशों में बोली जाती है अपितु शैक्षणिक जगत में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रही है। हिंदी को वैश्विक पथ का पथिक बनाने में बहुत से विदेशी हिंदी विद्वानों का महत् योगदान रहा है। आज अमरीका, कनाडा, यू.के., आस्ट्रेलिया, फिजी, मारीशस एवं यूरोप के अनेक देशों में हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रसार में विदेशी विद्वान और प्रवासी भारतीय कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ रहे हैं। इसके अलावा रूस, चीन एवं जापान आदि कई देशों में वर्षो से हिंदी से जुड़े विविध विषयों पर उच्च स्तरीय शोध कार्य हो रहे हैं।

बहुत से लोगों के लिए यह जानना विस्मयपूर्ण हो सकता है कि हिंदी भाषा का पहला व्याकरण डच विद्वान केटलार ने लिखा था और हिंदी साहित्य का पहला इतिहास फ्रांसीसी विद्वान गार्सी द तासी द्वारा लिखा गया था। हिंदी और भारतीय भाषाओं का पहला व्यापक सर्वेक्षण अंग्रेज विद्वान सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने किया था। हिंदी की किसी रचना पर पहला शोध प्रबंध 'द थियो ऑफ तुलसीदास' अंग्रेजी विद्वान जे.आर. कारपेंटर द्वारा लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया था। हिंदी शिक्षण की सुव्यवस्थित प्रारंभिक पाठ्य पुस्तकें जान वोथ विक गिलक्रिस्ट ने तैयार की थीं। मध्य युगीन संत कवियों की रचनाओं के पाठ-संपादन का कार्य वर्षो तक ल्युटवेन विश्ववविद्यालय के प्रो. विनांद कैलवर्ट ने किया था। प्रो. आर. एस. मैकग्रेगर का हिंदी-अंग्रेजी कोश, प्रो. दोई का जापानी-हिंदी कोश और प्रो. वेस्क्रो वनी का हिंदी-रूसी शब्दकोश हिंदी शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसके अलावा दीमशिल्सक (रूस), पोरिश्काण (चेक गणराज्य), फेयर बैंकर्स (अमेरिका) की हिंदी पाठ्य पुस्तकें, बारान्निकोव (रूस), चार्लिशेव (रूस), सेंकोविच (रूस), रूपर्ट स्नेदल (यू.के.), इमरे बांगा (हंगरी), मारग्रेट जात्समलाफ (जर्मन), शर्ले बोट्राविल (फ्रांस) और जिलियन राइट (यू.के.) की हिंदी सेवा से सभी परिचित हैं। हिंदी की विदेशी भाषिक शैलियों का अध्ययन राडेन मोग (जो अमेरिका के हैं और प्रज्ञाचक्षु हैं), सूजन हॉम्स (अमेरिका), जे.

सम्पर्क: प्रमुख (राजभाषा), बैंक ऑफ बड़ौदा, कारपोरेट कार्यालय
बांद्रा-कुर्ला संकुल, जी ब्लॉक, बांद्रा (पूर्व) मुम्बई-400051
मो.7506378525, ई-मेल: jkarnavat@gmail.com

एफ. सीगज (ऑस्ट्रेलिया), तेयो दामिस्तेख्त (हॉलेन्ड), आर. के. बार्ज (ऑस्ट्रेलिया) हरमन वान ओल्फहन (यू.एस.ए.) आदि विद्वानों ने किया है। इनके अलावा भी हिंदी भाषा और साहित्य का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले विद्वानों के नामों की एक लम्बी सूची है।

हिंदी को अपने-अपने देश में प्रतिष्ठित कर वैश्विक रूप प्रदान करने के अलावा इन विद्वानों ने ऐसे बहुमूल्य कार्य भी किए हैं जिनसे सम्पूर्ण हिंदी समाज लाभान्वित हो रहा है। बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के ने अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश की रचना कर एक महान कार्य किया। उन्होंने रामकथा के विशेषज्ञ के रूप में भी अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। मेटरलिंक के नाटक 'ब्लू बर्ड' का 'नीलपंछी' शीर्षक से हिंदी में अनुवाद भी उनके द्वारा किया गया। चेकोस्लोवाकिया के डॉ. ओदोलेन स्मेकल अपनी हिंदी कविताओं के लिए भारत में खूब पहचाने जाते हैं। उनके आठ कविता संग्रह हिंदी में प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने हिंदी को अपनी दूसरी मातृभाषा माना और अपना सारा जीवन हिंदी की सेवा में अर्पित करने का निश्चय किया।

डॉ. स्मेकल ने 'गोदान' को चेक भाषा में अनूदित किया।

इंग्लैंड के डॉ. रूपर्ट स्नेदल यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन के दक्षिण एशिया विभाग में प्राच्य और अफ्रीकी अध्ययन केन्द्र में हिंदी के रीडर रहे हैं। मध्ययुगीन एवं आधुनिक हिंदी साहित्य से संबंधित उनके अनेक शोध पत्र अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित हुए हैं। डॉ. हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा के अंशों का हिंदी से अंग्रेजी में अनुवाद उन्होंने किया है। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती की ''कनुप्रिया'' का भी अंग्रेजी अनुवाद किया। वर्तमान में वे हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत यू.एस.ए. में हिंदी अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

जापान के डॉ. तोमियो मिजोकामी हिंदी क्षेत्र में एक अन्य विलक्षण व्यक्तित्व हैं। उन्होंने इलाहाबाद, शांति निकेतन और दिल्ली में अध्ययन किया है और हिंदी, जापानी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने हिंदी नाटकों की प्रस्तुति में भी अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। रूस के अलेकसई पेत्रोविच वारान्निकोव को तो व्यक्ति नहीं अपितु संस्था कहा जा सकता है। उन्होंने अपने देश में भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा अध्यात्म के अध्ययन को प्रोत्साहित किया और लगभग 250 शोध-पत्र लिखे। वे हिंदी-रूसी शब्दावली के जनक थे। इटली के प्रो. जोर्जो मिलानेत्ति ने अपने अध्ययन की शुरुआत संस्कृत से की। इसके बाद उन्होंने हिंदू धर्म, हिन्दू इतिहास, हिंदी साहित्य एवं सूफी साहित्य का भी अध्ययन किया। उन्होंने जायसी के 'पद्मावत' का अवधी से इतालवी में अनुवाद किया जो वेनिस के मर्सीलियो प्रकाशन से प्रकाशित हुआ।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के हिंदी प्रोफेसर डॉ. मैकग्रेगर का नाम हिंदी के शिक्षा शास्त्रियों में प्रमुखता से लिया जाता है। जिन्होंने पाश्चात्य देशों में हिंदी प्रशिक्षण के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. मैकग्रेगर एक उच्चकोटि के अनुवादक, संतकाव्य के विशेषज्ञ और व्याकरण के पंडित रहे। उन्होंने विदेशी हिंदी विद्यार्थियों के लिए ''हिंदी मौखिक अभ्यास माला'' नामक पुस्तक प्रकाशित कराई थी, जो बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। उनकी ''आउटलाइन ऑफ हिंदी ग्रामर'' नामक महत्वपूर्ण पुस्तक सारे यूरोप और हिंदी अध्यापन वाले देशों में पाठ्यपुस्तक के रूप में निर्धारित है।

जर्मनी के डॉ. लोठार लुत्से हिंदी, बांग्ला और कन्नड़ के विद्वान हैं और उन्होंने कई रचनाओं का सीधे इन भाषाओं से जर्मन में अनुवाद किया। उनकी समसामयिक हिंदी कविताओं का जर्मन अनुवाद एक संकलन के रूप में 1968 में प्रकाशित हुआ था। वे एक ओजस्वी हिंदी वक्ता भी थे। भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों पर उनका कार्य विशेष उल्लेखनीय रहा। पोलैण्ड के ब्रिंस्की ने बनारस विश्व हिन्दू विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि ''कान्सेप्ट् ऑफ एशियन इंडियन थियेटर'' विषय पर प्राप्त की। यह करते हुए उन्होंने हिंदी का भी अध्ययन किया और फिर पोलस्की (पोलिश) भाषा से हिंदी और संस्कृत से पोलस्की अनुवाद के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया।

इस प्रकार भारत के बाहर विदेशी हिंदी अध्येताओं ने हिंदी की धारा को पूरे विश्व में प्रवाहित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इन विदेशी हिंदी आराधकों ने अपने मौलिक लेखन एवं नई दृष्टि से भारत को भी एक नया रास्ता दिखाया।

हिंदी की शक्ति और महत्ता का प्रतीक है यह तथ्य कि आज विश्व के कोने-कोने में विदेशी विद्वान हिंदी कर्म को बड़ी निष्ठा के साथ निष्पादित कर रहे हैं।

♦♦♦

ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण के सांस्कृतिक आयाम

तरूण कुमार

"हिंदी एक अखिल भारतीय भाषा है, ऐसी भाषाई चेतना हर प्रवासी भारतीयों के मन में होती है। यही कारण है कि यहाँ हिंदी की कक्षाओं में पंजाबी, गुजराती, बांग्ला, तमिल, तेलुगू व अन्य भाषा-भाषी बच्चे भी हिंदी सीख रहे हैं।"

किसी भी भाषा के शिक्षण में उस भाषा समुदाय की संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके महत्व पर दुनिया भर में विस्तृत चर्चा हुई है और इस विषय पर शोध भी हुए हैं। भाषा की शिक्षा में संस्कृति और सांस्कृतिक तत्वों को शामिल किए जाने की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए यूरोप और अमेरिका की शिक्षण प्रणालियों में इसे संस्थागत रूप भी दिया गया है। अमरीकी विदेशी भाषा शिक्षण परिषद् भी विदेशी भाषा की शिक्षा में संस्कृति को शामिल किया जाना अहम मानती है।

भाषा की कक्षा में संस्कृति की शिक्षा उस भाषा समुदाय के न केवल सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के बारे में जानकारी देती है बल्कि स्वयं उस भाषा के शिक्षण में भी सक्रिय भूमिका निभाती है। इसी प्रकार संस्कृति की शिक्षा में भाषा की भूमिका अहम हो जाती है। इस संबंध में ब्रिटेन में कथक की नृत्यांगना दर्शिनी के कथन का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। वह बच्चों को नृत्य सिखाती हैं। 1 जुलाई 2018 को हिंदू मंदिर स्लाव में आयोजित हिंदी महोत्सव के शैक्षणिक सत्र में बोलते हुए उन्होंने कहा कि जब वे बच्चों को भारतीय नृत्य सिखाती हैं तो पहले उन्हें हिंदी गीतों के बोल समझाने पड़ते हैं। इसलिए पहले वह बच्चों को हिंदी गीतों के अर्थ समझाती हैं और उसके बाद उन्हें नृत्य के स्टेप्स सिखाती हैं। इस प्रकार वह नृत्य के माध्यम से हिंदी सिखा रही हैं।

इस परिदृश्य में नृत्य महज एक सांस्कृतिक तत्व नहीं है जिसे छात्रों को लक्ष्य भाषा की संस्कृति से अवगत कराने के लिए उपयोग किया गया है, बल्कि यह सांस्कृतिक तत्व उस भाषा के वाक्य विन्यास, शब्दावली और व्याकरण की शिक्षा की रूपरेखा भी तैयार करता है।

अंग्रेजों द्वारा भारत की औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया के साथ ही यूके में हिंदी शिक्षण की शुरुआत हो गई थी। बर्मिंघम स्थित 'गीतांजली बहुभाषी समुदाय' के अध्यक्ष हिंदी विद्वान डॉ. कृष्ण

सम्पर्क: अताशे (हिंदी व संस्कृति), (भारत का उच्चायोग, लंदन), यू.के.

कुमार का कहना है, 'ब्रिटेन में हिंदी/हिंदुस्तानी की शुरुआत 17 वीं शताब्दी में हो गई थी, ब्रिटिश इंडिया के उन अफसरों के लिए जो भारत जाते रहते थे। शिक्षा अंग्रेजी लिपि के माध्यम से होती थी। उस समय वे हिंदी को गँवारों की भाषा के रूप में देखते थे। जनमानस के लिए देवनागरी लिपि के माध्यम से विधिवत हिंदी शिक्षण की शुरुआत 1970 के दशक में हुई।'

बहरहाल, जो भी हो, तब अंग्रेज अपनी औपनिवेशिक जरूरतों को ध्यान में रखकर भारतीय संस्कृति और सामाजिक स्थिति को जानने के लिए हिंदी सीख रहे थे और आज प्रवासी भारतीय अपनी सांस्कृतिक अस्मिता और पहचान को बनाए रखने के लिए अपने बच्चों को हिंदी की शिक्षा दे रहे हैं।

ब्रिटेन के आप्रवासियों के लिए हिंदी उनकी सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक है। ब्रिटेन की जानी-मानी कहानीकार और कवयित्री श्रीमती उषा राजे सक्सेना कहती हैं, ''यह सच है, आप्रवासी भारतीय जहाँ भी हैं अपनी अस्मिता, अपनी भाषा और संस्कृति की चिंता सदा साथ लिए रहे हैं। दरअसल विदेशों में बसा भारतीय नए संदर्भों से जुड़ता अवश्य है, परंतु अपने मूल से नहीं कटता। वह हर रोज सपने में भारत की यात्रा पर होता है।'' डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अपने लंदन प्रवास के दौरान प्रवासियों की मन: स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है, 'जो लोग अपनी धरती पर नहीं लौट पाते, वे जहाँ रहते हैं वहाँ अपनी धरती का टुकड़ा अपने लिए रच लेते हैं.... अपनी मिट्टी के लिए उसकी तड़प उसे कभी देश वापस लाती है तो कभी मित्रों के बीच संवाद कराती है, तो कभी लेखन और अन्य सांस्कृतिक कार्यों में उभरती है।' अपने देश की मिट्टी, अपनी संस्कृति से इस लगाव के कारण ही ब्रिटेन में प्रवासी भारतीय अपनी मूल सभ्यता और संस्कृति से जुड़े रहना चाहते हैं। ऐसे में वे चाहते हैं कि उनके बच्चे भी हिंदी सीखें।

इस संदर्भ में इंगलैंड के बर्मिंघम शहर में 2015 में आरंभ किए गए 'बर्मिंघम सत्संग सम्मेलन' का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। 24 जनवरी 2015 को बर्मिंघम के सात परिवारों ने मिलकर 'बर्मिंघम सत्संग संगम' की शुरुआत की। सत्संग की एक निर्धारित शैली होती है जिसमें दीप ज्योति जलाकर स्तुति करने से लेकर, गणेश वंदना, भजन, आरती, शांति पाठ आदि किए जाते हैं। सभी परिवारों के बच्चों, जो कि 3 वर्ष से लेकर 13 वर्ष की आयु के बीच के थे, की भी इन सत्संगों में भागीदारी होने लगी। इस सत्संग का इन बच्चों पर इतना असर हुआ कि बच्चे भी भजन, स्तुति आदि में रुचि लेने लगे। अभिभावकों के प्रयास से बच्चों को संस्कृति के साथ-साथ हिंदी की भी शिक्षा दी जाने लगी। सप्ताहांत में उनकी हिंदी कक्षाएँ आरंभ हो गई और इसमें दिन ब दिन छात्रों की संख्या बढ़ रही है। इसमें तेलुगू, तमिल व अन्य भाषा-भाषी बच्चे भी हिंदी सीख रहे हैं। 'बर्मिंघम में संस्कृति से भाषा सिखाने की यह अनोखी पहल तीन वर्ष पहले आरंभ हुई और आज इसमें तीस से अधिक परिवार शामिल हैं।'

ब्रिटेन में उच्च स्तर पर हिंदी शिक्षण की बात करें तो कुछ वर्ष पहले तक यू.के. के चार विश्वविद्यालयों यथा कैंब्रिज, ऑक्सफोर्ड, लंदन और यॉर्क में हिंदी की विधिवत पढ़ाई हो रही थी। कैंब्रिज, लंदन और ऑक्सफोर्ड में हिंदी अध्यापन में हिंदी भाषा और भाषा विज्ञान पर विशेषकर व्याकरण, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान एवं प्रेमचंद की कहानियों की शैली पर जोर दिया जाता था लेकिन पढ़ने वाले छात्रों की घटती संख्या और आर्थिक कारणों से आज सभी विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई बंद हो चुकी है। कैंब्रिज विश्वविद्यालय अंतर्राष्ट्रीय छात्रों के लिए आईजीसीएसी में हिंदी की परीक्षाएँ आयोजित कर रहा है जिसे कैंब्रिज असेसमेंट के नाम से जाता है। कैंब्रिज असेसमेंट में श्री ऐश्वर्य कुमार और श्रीमती अरुणा अजित सरिया हिंदी का कार्यभार देख रहे हैं। यॉर्क विश्वविद्यालय में एक समय में सबसे अधिक हिंदी के छात्र हुआ करते थे लेकिन यहाँ से हिंदी का पाठ्यक्रम पाँच वर्ष पहले ही हटा दिया गया है। लंदन विश्वविद्यालय के प्राच्य एवं अफ्रीकी अध्ययन स्कूल में हिंदी की पढ़ाई विधिवत चल रही है। यहाँ फ्रेंचेस्का ओरिसिनी, लूसी रौसेंस्टाईन एवं राकेश नॉटियाल हिंदी अध्यापन में सक्रिय हैं। इसके अलावा कुछ व्यावसायिक लैंग्वेज सेंटर्स जैसे सिटी लिट, कोवेंट गार्डेन, यूडेमी, किंग्स कॉलेज लंदन में संध्याकालीन कक्षाएँ आयोजित की जाती हैं।

जहाँ तक स्कूलों का संबंध है आज ब्रिटेन के किसी भी स्कूल में हिंदी की पढ़ाई नहीं हो रही है। 70 के दशक से जब भारतीय मूल के आप्रवासी ब्रिटेन आने लगे तब से स्वैच्छिक संस्थाएँ खुलने लगीं जिनमें हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था शुरू हो गई

थी। जब राष्ट्रीय पाठ्यक्रम बना तब कुछ स्कूलों में भी हिंदी की पढ़ाई शुरू हो गई थी। मातृभाषा आंदोलन के बाद केंद्रीय शिक्षा विभाग ने हिंदी को आधुनिक विदेशी भाषाओं के पाठ्यक्रम के अंतर्गत उन्नीस भाषाओं के साथ रख लिया था। विद्यार्थियों ने बड़े उत्साह के साथ माध्यमिक शिक्षा की जीसीएसई की परीक्षा भी देनी शुरू कर दी। विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़ने लगी थी। 1988 में यह संख्या 13 थी जो वर्ष दर वर्ष बढ़कर 1994 में 376 हो गई थी। फिर भी बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं से कम थी। 1994 में लंदन और ईस्ट ऐंगलिया परीक्षा बोर्ड ने आर्थिक दृष्टि से हिंदी की परीक्षा को अलाभकारी मानकर बंद कर दिया। 1998 में ए स्तर की परीक्षा में भी हिंदी बंद कर दी गई। वर्ष 2017 में ऐडक्सेल बोर्ड ने भी जीसीएसई स्तर पर विद्यार्थियों की संख्या कम होने के कारण हिंदी की परीक्षा बंद कर दी है। स्कूलों में जीसीएसई के स्तर पर परीक्षा में हिंदी यद्यपि बांग्ला, पंजाबी और उर्दू वैकल्पिक विषय के रूप में उपलब्ध है लेकिन हिंदी का विकल्प इन स्कूलों में उपलब्ध नहीं है। हिंदी के पठन-पाठन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। फिर भी इंगलैंड में हिंदी की पढ़ाई सामुदायिक स्तर पर मंदिरों, स्वैच्छिक संस्थाओं आदि में कुछ हिंदी प्रेमियों और हिंदी सेवियों की वजह से चल रही है।

कहा जाता है कि मंदिर सदियों से शिक्षा और संस्कृति के केंद्र रहे हैं। एक अनुमान के मुताबिक ब्रिटेन में 160 मंदिर हैं जिनमें से 15-20 मंदिरों में हिंदी की कक्षाएँ आयोजित की जा रही हैं। कलानिकेतन मंदिर नॉटिंघम में वर्ष 2017 में अलग-अलग कक्षाओं में कुल 92 बच्चे हिंदी सीख रहे थे। अन्य मंदिर जहाँ हिंदी की पढ़ाई की जा रही है उनमें महालक्ष्मी मंदिर, हिंदी सोसाइटी मंदिर टूटिंग, भारतीय विद्याभवन मैनचेस्टर, गीता भवन लेस्टर, दुर्गा भवन रंडेल, श्रीकृष्ण मंदिर वुल्वरहैंप्टन, हिंदू समाज मंदिर रेडिंग, आर्य समाज मंदिर इलिंग, ब्रह्मर्षि मिशन आश्रम हिंदू मंदिर साउथऑल, इंडिया सेंटर मंदिर काडिफ, संस्कृति गुरू फिंचले, विश्व हिंदू मंदिर इल्फर्ड, वैदिक ऑर्गनाइजेशन फॉर इंडियन कल्चर एंड एजुकेशन, मैनचेस्टर आदि। इसके अलावा कई केंद्र हैं जहाँ हिंदी शिक्षण का कार्य किया जा रहा है जैसे बाल भवन, भारतीय विद्याभवन, बाल गोकुलम, कैंनफोर्ड कम्यूनिटी कॉलेज, फ्लुएंट फॉरएवर, पीएचजी टीचिंग, हिंदी जंक्शन आदि। नार्थ लंदन में स्थित स्वामी नारायण मंदिर ब्रिटिश शिक्षण प्रणाली से संबद्ध स्वतंत्र रूप से ब्रिटिश स्टैंडर्ड पाठ्यक्रम के साथ छात्रों को भारतीय भाषाओं, धर्म और संस्कृति की बहुमुखी शिक्षा प्रदान कर रहा है। स्वामी नारायण स्कूल को ब्रिटेन के शिक्षा क्षेत्र में वही मान्यता प्राप्त है जो ब्रिटेन के स्कूलों को। इस स्कूल में हर जाति, नस्ल और रंग के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

'यू.के. हिंदी समिति' के अंतर्गत कई केंद्रों में लगभग 360 बच्चे अलग-अलग स्तर पर हिंदी सीख रहे हैं। इनमें 5 वर्ष की आयु से लेकर 18 साल तक की उम्र के बच्चे हैं। इसके अलावा इन केंद्रों में कुछ वयस्क भी हिंदी सीख रहे हैं जिनमें स्थानीय व कुछ कैरिबियाई मूल के लोग शामिल हैं। यह संस्था वर्ष 2003 से 'हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता' का आयोजन कर रही है जिसमें विजेता बच्चों को भारत भ्रमण पर ले जाया जाता है। कुछ शिक्षक ऑनलाईन और स्काईप के माध्यम से भी बच्चों को हिंदी की शिक्षा दे रहे हैं। स्कूलों में हिंदी विषय का विकल्प नहीं मिल पाने के कारण कुछ वर्षों तक हिंदी सीखकर बच्चे हिंदी पढ़ना छोड़ देते हैं इसलिए हिंदी शिक्षण का कोई व्यवस्थित रूप उभर कर सामने नहीं आ रहा है। हर केंद्र में पढ़ने वाले बच्चे अलग-अलग ढंग से हिंदी सीखते हैं। हिंदी शिक्षण का कोई मानक स्वरूप नहीं है, न ही कोई सर्टिफिकेशन की व्यवस्था है। एक निजी संस्था के रूप में 'यू.के. हिंदी समिति' परीक्षाएँ आयोजित करती है लेकिन इसकी अपनी सीमाएँ हैं।

भारत का उच्चायोग, लंदन भी इन हिंदी शिक्षण संस्थाओं की सहायता कर रहा है। पिछले दो वर्षों में उच्चायोग द्वारा इन केंद्रों/मंदिरों में हिंदी सीखने वाले बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रतियोगिताओं जैसे हिंदी काव्यपाठ प्रतियोगिता, हिंदी भाषण प्रतियोगिता आदि का आयोजन किया गया है और विजेता बच्चों को पुरस्कृत किया गया है। इसके अलावा उच्चायोग द्वारा समय-समय पर इन संस्थाओं को यथासंभव शिक्षण सामग्री भी उपलब्ध कराई जाती है।

हिंदी एक अखिल भारतीय भाषा है, ऐसी भाषाई चेतना हर प्रवासी भारतीयों के मन में होती है। यही कारण है कि यहाँ हिंदी की कक्षाओं में पंजाबी, गुजराती, बांग्ला, तमिल, तेलुगू व अन्य भाषा-भाषी बच्चे भी हिंदी सीख रहे हैं। परंतु यहाँ के हिंदी पाठ्यक्रमों में भारतीय और स्थानीय संस्कृति का अभाव

है। संस्कृति शिक्षण पर हुए अधिकांश शोध में इस बात पर चर्चा की गई है कि किस प्रकार पाठ्यक्रम और शिक्षण प्रविधियों के माध्यम से भाषा की शिक्षा में संस्कृति का समावेश किया जाए। इसके अतिरिक्त उस शोध का महत्वपूर्ण भाग मुख्य रूप से समकालीन पॉप कल्चर को भाषा की शिक्षा के टूल के रूप में इस्तेमाल से संबंधित रहा है। इस लिहाज से हिंदी शिक्षण के लिए हिंदी सिनेमा का उपयोग किया जा सकता है। डॉ. कृष्ण कुमार का मानना है कि हिंदी के पाठ्यक्रमों का निर्माण करते समय भाषा के साथ-साथ भारत की स्थानीय संस्कृति भी गुंफित रहे। ऐसा करने से हिंदी सजीव रहेगी। इस संबंध में जापान का उदाहरण रोचक है। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार 'जापान के अधिकांश विश्वविद्यालयों में हिंदी के पाठ्यक्रमों के निर्धारण में प्रोफेसर दोई और प्रोफेसर तनाका की भूमिका का विशेष महत्व रहा है। पाठ्यक्रम समिति के परामर्शदाता के रूप में इन विद्वानों ने यह मानकर पाठ्यक्रम निर्धारण किया है कि भाषा का संबंध संस्कृति से बहुत गहरा है। संस्कृति, मिथक, दर्शन और साहित्य सभी को मिलाकर पाठ्यक्रम का निर्माण होना चाहिए। इसी दृष्टिकोण को अपनाने के कारण जापान में स्नातक स्तर पर हिंदी पढ़नेवाला विद्यार्थी हिंदी भाषा के व्याकरण के साथ रामायण -महाभारत, पंचतंत्र और रामचरितमानस के बाद मोहन राकेश तक को पढ़ता है। भारत के तीज त्योहार, पर्व, व्रत, तीर्थ पूजा-उपासना के केंद्र, नदियों, पर्वत, देवी देवताओं शिव चरित सभी विषयों के बारे में जानकारी पाता है। कहना न होगा कि जापान में हिंदी शिक्षण का अर्थ है -भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति परंपरा का ज्ञान।' ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण में यद्यपि आरंभिक शिक्षा में भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकों का उपयोग होता है लेकिन उच्चतर स्तर पर इसका अभाव है। यहाँ बच्चों के लिए हिंदी शिक्षण पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति के साथ-साथ स्थानीय संस्कृति को शामिल किया जाना चाहिए ताकि उन बच्चों की रुचि बनी रहे।

आरंभ से ही भारतीय आप्रवासी जहाँ कहीं भी गए, अपने अन्य सांस्कृतिक प्रतीकों के साथ अपनी भाषा भी अपने साथ ले गए। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' ने मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनीदाद, गयाना, आदि देशों में आप्रवासी भारतीयों के बीच एक सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में हिंदी की उपस्थिति में सहायता की है। चूँकि एक लंबे समय से भारतीय कई अन्य भाषाई समुदायों के साथ रह रहे हैं इसलिए हिंदी और उन भाषाओं के बीच संपर्क भी गहरा हुआ है। इस संपर्क का असर हिंदी पर भी हुआ है। उदाहरण के लिए सूरीनाम और हॉलैंड के सूरीनामी हिंदी पर डच का प्रभाव, फिजी की हिंदी पर कैबिती प्रभाव और मॉरीशस की हिंदी पर क्रियोल का प्रभाव दिखता है। यहाँ तक कि ब्रिटेन में जन्मे भारतीय अप्रवासियों के बच्चों के हिंदी उच्चारण में अंग्रेजी का पुट होता है। उन्हें हिंदी शब्दों के उच्चारण में कठिनाई होती है क्योंकि उनकी शिक्षा-दीक्षा और रोजमर्रा के कामकाज सभी अंग्रेजी में होते हैं। इस प्रकार बोली की दृष्टि से दुनिया भर में हिंदी के स्वरूप में विविधता आई है। आप्रवासी भारतीयों के सांस्कृतिक संगठनों जैसे आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, हिंदी प्रचारिणी सभा, आदि द्वारा हिंदी का प्रचार-प्रसार किए जाने के कारण न केवल भारतीय मूल के लोग बल्कि अन्य विदेशी भी भारतीय संस्कृति, सिनेमा और संगीत में रुचि के कारण हिंदी सीख रहे हैं।

ब्रिटेन में लगभग 1.82 मिलियन भारतीय हैं जो कि यू.के. की कुल जनसंख्या का 2.88 प्रतिशत हैं। यहाँ की अर्थव्यवस्था में इनका योगदान लगभग 6 प्रतिशत है। ब्रेक्सिट के बाद दोनों देशों के बीच व्यापारिक रिश्ते बढ़ रहे हैं। इस दिशा में गति लाने के लिए आवश्यक है कि दोनों देशों के लोग एक दूसरे की भाषा और संस्कृति को समझें। चूँकि भारत के व्यावसायिक जगत में हिंदी-अंगरेजी मिश्रित भाषा का उपयोग जोरों पर है इसलिए भारत में बढ़ती व्यावसायिक संभावनाओं को देखते हुए वर्ष 2017 में इंग्लैंड के पोर्ट्सर्मथ कॉलेज में हिंग्लिश की पढ़ाई शुरू की गई है जिसमें अभी 18 छात्र हैं। लेकिन यह हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी नहीं बल्कि इससे हिंदी के मूल स्वरूप के विकृत होने का खतरा है।

भारत और ब्रिटेन के बीच लगभग चार सौ वर्षों से भी अधिक पुराना रिश्ता रहा है। वर्तमान में अभी दोनों देशों के बीच व्यापारिक रिश्ते मजबूत हो रहे हैं, ऐसे में ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण का एक नैसर्गिक माहौल बन रहा है। आवश्यकता है इस अवसर के सदुपयोग की। इसके लिए सरकार और ब्रिटेन में रह रहे भारतीय समुदाय दोनों के स्तर पर प्रयास की आवश्यकता है। यदि ऐसा संभव होता है तो आनेवाले समय में हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रसार की बहुत अच्छी संभावना बनती है।

♦♦♦

हिंदी भाषा आस्था एवं अपेक्षा

सुरेश सक्सेना

"हिंदी के मानक प्रारूप को समझने के लिए हमें विद्वान साहित्यकारों जैसे मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, निराला, प्रसाद, महादेवी और दिनकर आदि को हिंदी मानक भाषा की कसौटी मानना होगा। हिंदी ने हमें एकसूत्रता में बाँधने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है, अतः हिंदी आज हमारे राष्ट्र की मानक भाषा है।"

मनुष्य बिना वैचारिक आदान-प्रदान के या बिना संभाषण या आचरणगत आदान-प्रदान के अधूरा है। वस्तुतः समाज के अस्तित्व और उसकी कल्पना के मूल को संभाषण के बिना नहीं समझा जा सकता। भाषा को इसलिए भावों और विचारों के परस्पर आदान-प्रदान का मुख्य साधन माना जा सकता है। भाषा शब्द की संरचना संस्कृत की भाष् धातु से हुई जिसका अर्थ है बोलना। यानि जो बोली जाए वह भाषा है किन्तु भाषा तो लिखित भी होती है। भाषा अभिव्यक्ति की एक ऐसी कला है—एक वैज्ञानिक कला, जिसे एक निरंतर शुद्ध अभ्यास से अर्जित कर सकते हैं।

मनुष्य जाति के विकास के साथ-साथ भाषा का भी विकास होता रहता है। अलग-अलग प्रदेशों के लोगों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए भाषा बहुत कुछ नया लेती चलती है। देश काल के अनुसार बदलती हुई भारत की प्राचीन अभिभाषा संस्कृत, प्राकृत, पाली और व्यवहार से होती हुई आज हिंदी के रूप में जानी जाती है। यह एक सामाजिक वस्तु है। समय के साथ उसका स्वरूप बदलता जाता है। हिंदी भाषा का मूल स्रोत संस्कृत भाषा है। अतः इसके मूल रूप को संस्कृतनिष्ठ हिंदी कह सकते हैं...ऐसी हिंदी जो संस्कृत के शब्दों से बनी है। इसे साहित्यिक हिंदी भी कहा गया है। इतना स्पष्ट है कि संस्कृनिष्ठ हिंदी का संस्कृत भाषा से निकट का संबंध है। हिंदी का अधिकांश साहित्य इसी शैली में लिखा गया है। अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी दूरदर्शन आदि में इसी शैली का प्रयोग किया गया हैं, नए-नए पारिभाषिक शब्दों का निर्माण भी इसी में किया जा रहा है। अधिकांश साहित्यकारों ने इसे अपनाया इसी कारण यह साहित्यिक भाषा है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार ''हिंदी में सबसे बड़ा आकर्षण इसकी देवनागरी लिपि तथा संस्कृत शब्दावली है।'' अतः हम कह सकते हैं कि संस्कृतनिष्ठ हिंदी संस्कृत का आधुनिक प्रचलित रूप है। आधुनिक युग के साहित्यकारों ने संस्कृतनिष्ठ एवं साहित्यिक हिंदी का जीवन्त एवं सशक्त प्रयोग किया हैं यह भाषा उत्तर और दक्षिण भारत में सम्पर्क भाषा का काम करती है। संक्षेप में हम इसे देश की संस्कृति एवं शैक्षणिक भाषा कह सकते हैं। यह राजभाषा और संभावित राष्ट्रभाषा है।

सम्पर्कः 44 पंचशील पार्क, (फायर स्टेशन के सामने), जी.टी. रोड, साहिबाबाद, गाजियाबाद, (यू.पी.)—201005, मो. : 9582315864

हिंदी की तरह हिन्दुस्तानी भी हिंदी की बोलचाल की भाषा है। इसे संस्कृतनिष्ठ हिंदी और उर्दू का मूलाधार कहा जाता हैं, इसमें तद्‌भव शब्दों का बाहुल्य होता है। वर्तमान में अधिकांश साहित्य हिन्दुस्तानी शैली में ही लिखा जा रहा है।

भक्ति काल में गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए विभिन्न समुदायों में समन्वय स्थापित करने का कार्य किया, आधुनिक काल में स्वतंत्रता आंदोलन में भारत की अखण्डता के लिए भाषा के क्षेत्र में समन्वय उपस्थित करने का वही कार्य गाँधीजी ने किया। उन्होंने इसका प्रयोग अपने भाषाओं, पत्रव्यवहारों और लेखन आदि में किया। दूसरों से भी इसे अपनाने का आग्रह किया। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसके प्रत्येक भाग पर भारतीयता की छाप है। इसके प्रारम्भिक साहित्य में धर्म, दर्शन और नीति विषयों की शब्दावली का प्रयोग मिलता है। बाद में इसमें अनेक काव्यों, असंख्य प्रेमाख्यानों और प्रबंध काव्यों की रचना हुई आज हिंदी एक सर्वमान्य भाषा का रूप ले चुकी है जिसके द्वारा हम अपनी बात दूसरों तक पहुँचाते हैं। शिक्षित और सुसंस्कृत वर्ग सुव्याकरणकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। यह एक निश्चित पैमाने के साथ लिखी जाती है। अत: यह एक मानक रूप ले चुकी है। इसके इस मानक रूप को संस्कृतनिष्ठ भाषा या साधु भाषा भी कहते हैं। किसी प्रदेश में बोले जाने वाली बोली जब बड़े नगरों के नेताओं और साहित्यकारों द्वारा बोली जाने लगती है—तब उसका मानकीकरण होता है और वह क्षेत्र से नगर और नगर से राष्ट्र में प्रचारित होकर विकास पथ पर अग्रसर होती है। यह विकास उसे सांस्कृतिक और राजनैतिक सहयोग से मिलता है।

हिंदी एक मानक भाषा है। आज पढ़े-लिखे लोग व्याकरण के स्तर पर उसका सही प्रयोग करना जानते हैं। इसका विकास राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक सहयोग से सम्भव हुआ है। हिंदी के मानक प्रारूप को समझने के लिए हमें विद्वान साहित्यकारों जैसे मैंथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, निराला, प्रसाद, महादेवी और दिनकर आदि को हिंदी मानक भाषा की कसौटी मानना होगा। हिंदी ने हमें एक सूत्रता में बाँधने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है अत: हिंदी आज हमारे राष्ट्र की मानक भाषा है। हम सब जानते हैं कि राष्ट्र की एकता हिंदी से ही सम्भव है। विभिन्न जातियों और बोलियों वाले 'भारत देश' को एक सूत्र में बाँधने के लिए मानक भाषा का अत्यधिक महत्व है।

भाषा के विभिन्न प्रचलित रूपों में से एक को चुनने के पीछे राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि कई कारण हो सकते हैं। मानकीकरण के लिए उसी भाषा का प्रयोग किया जाता है जिसका प्रयोग शिक्षित एवं सम्भ्रान्त लोग करते हैं। अंतत: यही भाषा राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करती है। फिर इस भाषा से सम्बन्धित कोश एवं व्याकरण ग्रन्थों का निर्माण होता है। सरकारी न्यायालयों, कार्यालयों, शिक्षा संस्थानों और अकादमियों द्वारा इन कोशों का निर्माण होता है। इस पर काफी काम हो चुका है एवं जारी है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक, तकनीकी शब्दावली की भी आवश्यकता होती हैं और श्रेष्ठ ग्रन्थों का अनुवाद होने लगता है। हिंदी में भी यह प्रक्रिया जारी है। समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा हिंदी भाषा का प्रयोग ही इसकी स्वीकृति है। आजकल उद्योग, वाणिज्य विज्ञान, विधि आदि अनेक क्षेत्रों में हिंदी के प्रयुक्त होने की प्रक्रिया काफी हद तक जारी है।

आज हिंदी हमारी राजभाषा है। यह किसी विशेष प्रदेश की भाषा नहीं अपितु प्रान्तीय भाषा का ही एक विकसित रूप है जिसका प्रयोग सार्वजनिक कार्यों में होने लगता है...और हो रहा है।

आज हिंदी, विकासोन्मुख होते-होते सब भारतीय भाषाओं पर अपना अधिकार जमा बैठी है। अहिंदी प्रान्तों जैसे महाराष्ट्र, बंगाल, तमिलनाडु आदि में धीरे-धीरे व्यवहार में आ रही है। हिंदी का आधुनिक स्वरूप एक लम्बी विकास प्रक्रिया का परिणाम है इसके विकास में राजनैतिक, समाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों का योगदान है।

हिंदी भाषा को यूँ तो 14 सितम्बर 1949 को ही, देवनागरी लिपि में भारत की कार्यकारी और राष्ट्रभाषा (1) का दर्जा अधिकारिक रूप से दिया गया था और तभी से 14 सितम्बर का दिन ''हिंदी दिवस'' के रूप में मनाया जाता है, परन्तु आज भी इसकी विकास क्रिया में बहुत कुछ होना बाकी है आज भी उसे वह सम्मान प्राप्त नहीं है जो होना चाहिए था। आज आर्थिक और तकनीकी विकास की छाया में यह अपना सम्मान खोती चली जा रही है, हर क्षेत्र में इंग्लिश भाषा के प्रयोग को देखते हुए इंग्लिश का प्रचलन बढ़ता हुआ प्रतीत होता है। एक बहुत लम्बे समय अंग्रेजी के आधीन रहा देश उनकी भाषा के साये से बाहर नहीं निकल पा हा है किसी भी बाहरी देश में हमारी राष्ट्रभाषा और संस्कृति ही हमारी पहचान है। हिंदी ही हमारे प्राचीन इतिहास को उजागर करती है और वही हमारी पहचान है। 'हिंदी दिवस' मनाने का एक सबसे बड़ा कारण है भारतीयों के दिलों में हिंदी भाषा के महत्व को पहुँचाना। हिंदी भाषा के प्रति उनमें प्रेम उजागर करना

ताकि हिंदी भाषा बोलते समय हमें शर्मिंदिगी महसूस न हो—देश में हो या विदेश में, यह जरूरी है कि हम राष्ट्रभाषा को सम्मान दें। भारत सरकार ने अपनी हिंदी भाषा को आदर्श के अनुरूप बनाने के लिए एक लक्ष्य बनाया—इसे व्याकरण और वर्तनीयुक्त करने का। आज भारत के अलावा इसे सूरीनाम, पाकिस्तान, त्रिनिदाद एवं मॉरीशस आदि कई देशों में बोली जाती है। लगभग 250 मिलियन लोगों द्वारा मातृभाषा के रूप में बोली जाती है।

हिंदी भाषा के तीन बड़े केन्द्र, मेरठ, दिल्ली और आगरा की बोलियाँ मानक हिंदी पर आधारित हैं। वैसे साहित्यिक और व्यावहारिक भाषा के रूप में आंध्र प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, बिहार, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश आदि में इसका प्रयोग होता है।

बोधगम्यता की दृष्टि से भी हिंदी का प्रयोग अहिंदी भाषा क्षेत्रों में भी होते है।

इसके विकास के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए हैं किन्तु अनेक अभी भी वांछनीय हैं। इनमें कुछ इस प्रकार हैं—विज्ञान और प्रद्यौगिकी के अनुरूप हिंदी भाषा के विकास में नए आयाम जोड़ना, जिसमें सुगम तकनीकी लेखन शैली का तीव्र गति से विकास हो। विद्वानों को वैज्ञानिक लेखन की विषय-वस्तु और उसको सरल रूप में प्रस्तुत करना तथा मानक रूप को ऐसी शैली में विकसित करना कि वह बोधगम्य हो सके। इस पर विचार-विमर्श कर एक स्पष्ट नीति बनानी चाहिए। ग्रन्थों के हिंदी अनुवाद की भाषा व शब्दावली का चयन इस प्रकार करें कि वह जटिल व बोझिल न होकर सामान्य जन तक ले जाई जा सके। भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय, विज्ञान एवं यांत्रिक अनुसंधान परिषद् को संयुक्त रूप से इस पर कार्य करना चाहिए। विश्वविद्यालयों, आई.आई.टी. और संस्थानों एवं राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और उद्योगों में हिंदी जानने वाले विख्यात वैज्ञानिकों एवं तकनीकी विशेषज्ञों की मदद लेनी चाहिए।

हिंदी भाषा के विकास के लिए यूँ तो विभिन्न क्षेत्रों में एक अच्छी गति से कार्य किया जा रहा है परन्तु भावनात्मक स्तर पर इसे प्रोत्साहन देने के लिए जो कदम आपेक्षित है उन पर भी पुनः विचार कर एक राष्ट्रव्यापी नीति बनानी होगी। जिस प्रकार स्वामी विवेकानंद ने हिंदी को गौरवान्वित करते हुए विदेश में इसके महत्व को दर्शाया था उसी प्रकार प्रत्येक भारतवासी को अपनी राष्ट्रभाषा से लगाव व प्रेम होना चाहिए। इसको बोलते समय किसी प्रकार की हीन भावना का अनुभव न करते हुए स्वयं को गौरवान्वित महसूस करना चाहिए।

♦♦♦

ग्याहवें विश्व हिंदी सम्मेलन की निरंतरता में नई दिल्ली में भारतीय विद्वानों का सम्मान समारोह

हिंदी की भाषिक संस्कृति: शिक्षण के विविध आयाम

प्रो. वशिनी शर्मा

"विभिन्न देशों, विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों, लेखकों, कवियों ने बार-बार यही बात दोहराई है कि मानव का स्वभाव, मनोभाव, आदतें, मनोवृत्तियाँ कहीं भी, कभी भी बदलती नहीं हैं, चाहे वह कोई देश हो, कोई जाति हो, कोई रंग हो, कोई समय हो, कोई सभ्यता हो, कोई संस्कृति हो।"

सम्पर्क: 53, कैलाश विहार, आगरा, पिन-282007, उत्तर प्रदेश

विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण का अंतर्राष्ट्रीय महत्व शैक्षिक एवं वैश्विक संदर्भों में अब विचार या चर्चा का क्षेत्र न रह कर सक्रिय कार्यान्वयन की महती भूमिका की अपेक्षा कर रहा है। विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, अखिल भारतीय स्वैच्छिक संस्थाओं एवं विभिन्न वि.वि. के प्रयासों के बाद भी अंतर्राष्ट्रीय मानक पाठ्यक्रम और उपयुक्त सामग्री की माँग बनी हुई है। उक्त दिशा में समेकित समग्र प्रयासों का एकीकृत संचालन कई विश्व हिंदी सम्मेलनों की विचार गोष्ठियों का मुख्य विषय भी रहा।

हिंदी शिक्षण की समस्याएँ प्रवासी भारतीय छात्रों एवं अन्य देशों के छात्रों के लिए एक-सी नहीं हैं। चारों भाषा कौशलों के विकास के साथ अध्येय भाषा की संस्कृति का बोध अतिरिक्त कौशल के रूप में विकसित किया जाता है। विदेशी भाषा शिक्षण में भाषा कौशलों के विकास के साथ-साथ छात्रों को उस भाषा की संस्कृति से भी परिचित कराया जाना चाहिए। भाषा में प्रयुक्त शब्दों, वाक्यांशों तथा वाक्यों का अर्थ भाषिक संस्कृति से नियंत्रित होता है। मातृ-भाषा के प्रयोक्ता के लिए यह समस्या नहीं होती।

हिंदी की भाषिक संस्कृति का शिक्षण

मातृभाषा उपार्जन के क्रम में भाषिक संस्कृति अनायास ही आत्मसात कर ली जाती है पर अन्य भाषा के रूप में इसे सीखना होता है। भाषा पर पर्याप्त अधिकार करने के लिए उसके सांस्कृतिक पक्ष की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है। इसके लिए उस भाषा-भाषी जनता की जीवन-शैली, रीति-रिवाजों, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक परम्परा तथा उनके जीवनमूल्यों से छात्रों को परिचित कराना जरूरी होता है। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण सहज रूप से सीखा जा सकता है। लक्ष्य भाषा की जीवनशैली एवं अर्थछटाओं और जीवन मूल्यों से परिचित न रहने पर विविध भाषिक कौशलों का ज्ञान होने पर भी छात्र भाषिक अभिव्यक्तियों का सही प्रयोग करने में असफल रहता है। जैसे किसी की मृत्यु के बाद सीधे-सीधे यह सूचना न देकर इस तरह कहा जाता है-

स्वर्गवासी हो गये, परलोक सिधार गए, गुजर गए, इस दुनिया में नहीं रहे, खुदा को प्यारे हो गये आदि...

संस्कृति शिक्षण का क्रम सारे शिक्षण के दौरान सुचारू रूप से क्रमबद्ध एवं नियमित हो। भारतीय संस्कृति, भारतीय धर्म, भारतीय त्यौहार से संबंधित ज्ञान सभी स्तर की पाठावली में श्रेणीकृत, स्तरीकृत रूप में दिए गए हैं।

तुलनात्मक परियोजना कार्य मातृ-भाषा एवं अन्य-भाषा संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन लघु-परियोजना कार्य के माध्यम से संपन्न कराया जा सकता है। संस्कार, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, साहित्यिक रचनाएँ, मुहावरे आदि से संबंधित लघु परियोजना कार्य विभिन्न छात्रों द्वारा विगत वर्षों में करवाया गया। भाषा खेलों द्वारा भी विभिन्न प्रकार के संदर्भों में प्रश्नोत्तर, मिलान, क्रासवर्ड पहेली आदि के द्वारा रोचक ढंग से संस्कृति का शिक्षण किया जा सकता है।

विश्व के विभिन्न देशों से हिंदी सीखने आनेवाले ये छात्र हिंदी को एक नया वैश्विक स्वरूप और संदर्भ प्रदान करते हैं। ये सब हिंदी सीखते तो एक ही रूप में हैं, पर इनके व्यवहार में हिंदी का स्वरूप इन की अपनी भाषाओं की सुगंध और मिठास लिए होता है। ये सब हिंदी पसंद करते हैं, पढ़ना चाहते हैं, सीखना चाहते हैं, हिंदी में रिक्शावाले से, सब्जी वाले से, दुकानदार से, अपने साथियों से- सभी से बात करना चाहते हैं। मेरे विचार से हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप के सच्चे नियामक यही छात्र हैं। जब हम अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी की बात करते हैं, मुझे लगता है कि हमें सिर्फ केंद्रीय हिंदी संस्थान में पढ़ाई जाने वाली मानक भाषा हिंदी को ही नहीं, बल्कि इन छात्रों द्वारा प्रयुक्त, स्थापित, सिद्ध हिंदी भी देखनी हैं, जो इन के मध्य सम्पर्क- सूत्र का कार्य करती है। यह संपर्क-भाषा हिंदी ही वस्तुत: हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप है।

विभिन्न देशों, विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों, लेखकों, कवियों ने बार-बार यही बात दोहराई है कि मानव का स्वभाव, मनोभाव, आदतें, मनोवृत्तियाँ कहीं भी, कभी भी बदलती नहीं हैं, चाहे वह कोई देश हो, कोई जाति हो, कोई रंग हो, कोई समय हो, कोई सभ्यता हो, कोई संस्कृति हो। मुस्कान की, खुशी की, गम की, आँसुओं की भाषा एक-सी है, देश-प्रेम की, ईश्वर भक्ति की, मोहब्बत की, नफरत की अभिव्यक्ति की भाषा सब जगह एक सी है, शादी, विवाह, त्योहार, उत्सव के संदर्भ में भी सब जगह परंपराएँ, मान्यताएँ एक-सी हैं, विश्वास, आस्थाएँ भी सबकी एक समान हैं। हमारी संस्कृति में जैसे प्रेम संबंध को जोड़ने के लिए एक सूत्र को प्रतीक माना जाता है, वैसे ही बल्गारिया में भी माना जाता है कि एक समय विशेष पर दूसरों की कलाई पर बांधा जाने वाला धागा हमारे प्रेम, शुभकामनाओं और शुभेच्छा का प्रतीक है। भारत की तरह यूक्रेन में भी माता-पिता की अनुमति विवाह की सफलता के लिए आवश्यक मानी जाती है। देशप्रेम की अभिव्यक्ति सभी में समान है। आँसुओं की, प्रेम की, इजहार की, इनकार की अभिव्यक्ति विश्व के हर कोने में समान है। श्रीलंका के छात्रों का गुरुजन के प्रति सम्मान सूचक गुरुजी संबोधन और दण्डवत प्रणाम भारतीय संस्कृति से किसी भी तरह भिन्न नहीं लगता।

सामाजिक रीति रिवाज

सोलह संस्कार: प्रमुख रीति-रिवाज

अंतिम संस्कार संबंधी अभिव्यक्तियाँ

वर्जित शब्दों / अपशब्दों का प्रयोग

हमारी सामाजिकता और अंधविश्वास कई प्रसंगों को सीधे कहने से रोकते हैं और हम उस प्रसंग को दूसरी तरह व्यक्त करते हैं -

- चेचक को 'माता आना' कहा जाता है।
- वर्जित शब्द जैसे दैनिक कर्म और नित्यकर्म के प्रसंग-दिशा मैदान जाना/ निबटना के रूप में
- लोगों को चोट पहुँचाने वाले प्रसंगों को अप्रत्यक्ष रूप से कहा जाता है -जैसे -किसी की मृत्यु होने पर

वे गुजर गए /वे अब इस दुनिया में नहीं रहे /खुदा को प्यारे हो गए /स्वर्गवासी हो गए / वे चल बसे

अन्य प्रसंगों में -

- उसकी इज्जत लूट ली /कुकर्म /दुष्कर्म किया/ मुँह काला किया

- उसकी माँग उजड़ गई / सुहाग /मेहंदी उजड़ गई

गाली-गलौज /अपमान /दुत्कार /धिक्कार

प्रशंसा /प्रोत्साहन /आशीर्वाद

भाषिक संस्कृति के पौराणिक प्रसंग

कुछ और महत्वपूर्ण पौराणिक प्रसंग

वरदान /वर देना, वचन देना, श्राप/शाप देना

वनवास, कोपभवन, स्वर्णमृग,

बीड़ा उठाना, स्वयंवर रचाना, हरण

चीरहरण, चक्रव्यूह

समुद्रमंथन, विषपान

देवी/देवताओं से संबंधित वाहन और अस्त्र और शस्त्र

एक देवता अनेक नाम से जाने जाते हैं

शिवगंगाधर, नीलकंठ, भोले, नटराज

कृष्ण – मुरलीधर, चक्रधर, पीतांबर, गोपाल, कान्हा /कन्हैया

राम – सीतापति, दशरथनंदन, मर्यादा पुरुषोत्तम

सांस्कृतिक धरोहर के बारे में कुछ जानकारी भी आवश्यक है।

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में भाषा शिक्षण सामग्री निर्माण में उन संभावनाओं की संक्षिप्त चर्चा की गयी है जो हिंदी के क्षेत्र में कार्यरत सभी संस्थाओं से सक्रिय भूमिका की अपेक्षा करती है।

- मल्टीमीडिया भाषा शिक्षण पैकेज का निर्माण
- दृश्यात्मक कोश, संदर्भ एवं परिचयात्मक भाषा संस्कृति कोश
- छात्रोपयोगी व्याकरण ग्रन्थ।
- वार्तालाप/ प्रयोजनपरक पुस्तिकाएं छात्रों के लिए, पर्यटकों के लिए, रोजगार के लिए।
- टी.वी. एवं अन्य जनसंचार माध्यमों का भाषा शिक्षण में प्रभावी उपयोग।
- फिल्मों एवं फिल्मी गीतों और संवादों का भाषा शिक्षण में प्रभावी उपयोग।

भाषा शिक्षण में शैक्षिक सहायक सामग्री- निर्माता प्रमुख संस्थाएँ

- केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
- केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली।
- राष्ट्रीय शैक्षणिक एवं अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।
- इन्दिरा गांधी, मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
- अन्तर्राष्ट्रीय महात्मा गांधी हिंदी विश्वविश्वालय, वर्धा।
- साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
- सी.डेक, पुणे

♦♦♦

महात्मा गाँधी और आधुनिक हिंदी कविता

भारत यायावर

गाँधीवाद का मतलब है—अन्याय, अत्याचार और तानाशाही का प्रतिरोध। गाँधीवाद का मतलब है—अपने-आप को बदलना और स्वावलंबी बनना। गाँधीवाद का मतलब है—कायरता की जगह निर्भीकता, रूढ़िवादिता की जगह परिवर्तन, सांप्रदायिक विद्वेष की जगह प्रेम और जातिवाद की जगह समरसता

सम्पर्क: यशवंत नगर, हजारीबाग-825301, (झारखंड),
मो. 9693091650

महात्मा गाँधी, तिलक के बाद सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व थे, जो स्वाधीनता-संघर्ष में केंद्रीय भूमिका निभाते हुए लगातार सक्रिय और गतिशील रहे। उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध का एक ऐसा राजनीतिक अस्त्र इस्तेमाल किया था, जिससे ब्रिटिश सत्ता की जड़ें हिल गई थीं। सत्य और अहिंसा पर आधारित गाँधी का जीवन और दर्शन इतना प्रेरक और प्रभावशाली था कि भारत में जन-जागरण की एक आँधी-सी चल पड़ी थी। गाँधीवाद का प्रभाव समाज के हर क्षेत्र पर पड़ा था, खासकर हिंदी साहित्य पर उनका अद्‌भुत असर था। हिंदी कथा-सम्राट प्रेमचंद गाँधीवाद से प्रभावित सबसे प्रखर कथाकार थे। हिंदी कविता में मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, दिनकर, बच्चन, नरेंद्र शर्मा, नागार्जुन, मुक्तिबोध आदि ने गाँधी के दर्शन से प्रभावित होकर कई कविताएँ लिखी हैं। सियाराम शरण गुप्त ने गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर लिखा है—''पद-पूजन का भी क्या उपाय। तू गौरव गिरि, उतुंग काय।''

सोहनलाल द्विवेदी ने लिखा है-''चल पड़े जिधर दो डग-मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर/ पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, मुड़ गए कोटि दृग उसी ओर।''

गाँधी के प्रति भारतीय जनता और हिंदी के आधुनिक कवियों का यह अद्‌भुत आकर्षण किसी दूसरे व्यक्तित्व के प्रति नहीं था। इसका कारण था, उनका व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर संपूर्ण रूप में जन-रूपांतरण कर लेना। गाँधीवाद का मतलब था और है-लगातार जनसंघर्ष चलाना, अपने अधिकारों और सामाजिक, आर्थिक स्वाधीनता के लिए लड़ना। गाँधीवाद का मतलब है—अन्याय, अत्याचार और तानाशाही का प्रतिरोध। गाँधीवाद का मतलब है—अपने-आप को बदलना और स्वावलंबी बनना। गाँधीवाद का मतलब है—कायरता की जगह निर्भीकता, रूढ़िवादिता की जगह परिवर्तन, सांप्रदायिक विद्वेष की जगह प्रेम और जातिवाद की जगह समरसता, साथ ही साथ सादगी, सच्चाई, प्रेम और मानवता, विदेशी की जगह स्वदेशी।

गाँधी होने के निहितार्थ को आधुनिक हिंदी कवियों ने जितना बखूबी समझा है और अपनी कविताओं में चित्रित किया है, वह अद्भुत है।

हिंदी के महान आलोचक नंददुलारे वाजपेयी ने गाँधी और उनके विचारों का आधुनिक हिंदी कवियों पर पड़े प्रभाव को स्पष्ट करते हुए लिखा है—''सन् 1918-19 में समाप्त होने वाला प्रथम महायुद्ध और सन् 1920 के आसपास भारतीय राजनीति में गाँधीजी का प्रवेश, दो ऐसे स्मरण हैं जिनके आधार पर इन्हीं वर्षों को नये साहित्यिक उन्मेष का प्रवर्तक तिथि मान लेने में किसी प्रकार की शंका नहीं होती।... गाँधीजी के रूप में एक महान् व्यक्तित्व भारतीय रंगमंच पर अवतरित हुआ और देश के राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन की पहली हलचल में सियारामशरण जी के भाावुकतापूर्ण आख्यान गीत और श्री रामनरेश त्रिपाठी की 'सुमन', 'पथिक' और 'मिलन' जैसी रचनाएँ प्रकाशित हुईं। ठाकुर गोपाल शरण सिंह की रचनाओं में एक नया प्रभाव देखा गया और श्री गया प्रसाद स्नेही जी अत्यंत सीधी और प्रभावपूर्ण राजनीतिक कविता करने लगे। राष्ट्रीय आंदोलन की इस पहली बहार में ही हिंदी-साहित्य को इस नये कवियों और लेखकों का उपहार मिला।''

इस आंदोलन ने वाजपेयी जी द्वारा उल्लेखित रचनाकारों के भाव-बोध को तो प्रभावित किया ही, उसी समय आधुनिक हिंदी कविता में प्रारंभ हुए 'छायावाद' को भी गहराई से प्रभावित किया। जिस तरह प्रथम असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर प्रेमचंद ने सरकारी नौकरी छोड़ दी, उसी प्रकार सुमित्रानंदन पंत जैसे कवि ने कॉलेज की पढ़ाई छोड़ दी। गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कवियों ने प्रकृति और ग्रामीण जीवन को अपने चित्रण का विषय बनाया। निराला ने भारतीय किसान का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया-

चूस लिया है सारा सार
हाड़-मांस ही है आधार

यह गाँधी का ही प्रभाव था कि उस समय के हिंदी के साहित्यकारों ने खादी का वस्त्र पहनना शुरू कर दिया था। यहाँ तक कि सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा जैसी प्रबुद्ध कवयित्रियाँ असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लेती थीं। वे जेल गयीं, लाठियाँ खायीं, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई, आभूषणों एवं कीमती वस्त्रों का परित्याग कर खादी की मोटी साड़ियों को अपनाया, शराबबंदी के लिए पिकेटिंग जैसे साहसी कार्यक्रम में डटकर भाग लिया।

गाँधीजी का चरखा कार्यक्रम भारतवासियों के स्वावलंबन का एक अचूक अस्त्र था। इसका प्रभाव इतना व्यापक था कि उस समय के दो प्रसिद्ध महाकाव्यों 'साकेत' और 'कामायानी' में भी कलात्मक संयम के साथ इस प्रसंग को पिरोया गया है। 'साकेत' के अष्टम सर्ग में सीता एक गीत गाती है—'मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।' सादगी में जीने की कला, जहाँ सूत कातते और कपड़े बुनते हुए लयबद्ध स्वर में गीत गाना, गाँधीवाद की प्रमुख देन है। मैथिलीशरण गुप्त गाँधीजी से प्रभावित महत्त्वपूर्ण कवि थे। स्वाभाविक है, उनकी कविताओं में गाँधी का अत्यधिक प्रभाव होना। वे लिखते हैं—

तुम अर्द्धनग्न क्यों अशेष समय में,
आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' जैसी कालयजी काव्यकृति पौराणिक आख्यान से संबद्ध होने के बावजूद कातने-बुनने जैसे गाँधीवादी कार्य से अछूती नहीं। 'ईर्ष्या' सर्ग में श्रद्धा अपने खाली समय का सदुपयोग तकली चलाकर सूत कातने से करती है—

तुम दूर चले जाते हो जब
तब लेकर तकली यहाँ बैठ
मैं उसे फिराते रहती हूँ
अपनी निर्जनता बीच पैठ।

गाँधी के चिंतन में 'दया' का सर्वाधिक महत्त्व था। वे लिखते हैं—''दया और अहिंसा अलग चीजें नहीं हैं। दया अहिंसा की विरोधी नहीं है और यह विरोधी हो तो वह दया नहीं है। दया को अहिंसा का मूर्तस्वरूप मान सकते हैं।'' (संपूर्ण गाँधी वांग्मय, खंड-39, पृष्ठ-415) यही दया मनुष्य के भीतर करुणा के रूप में विद्यमान होती है। मानव समाज से इसकी विलुप्ति भीषण हिंसक घटनाओं में परिलक्षित होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के परिप्रेक्ष्य में हुए भीषण नरसंहार को ध्यान में रखते हुए इसीलिए दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में लिखा है—''धर्म का दीपक, दया का दीप/कब जलेगा, कब जलेगा विश्व में भगवान।'' अनेक कवियों ने असहाय और कमजोर के प्रति अपनी संवेदना प्रकट

करते हुए अनेक कविताएँ लिखी हैं, उसके मूल में दया, करुणा, अहिंसा की भाव-संवेदना ही है। इन तमाम स्थलों में गाँधीवाद के प्रभाव को देखा जा सकता है।

गाँधीजी मानते थे कि भारत गुलाम है, सदियों से पद-दलित है। अत: यहाँ के नागरिक भी दलित है। इस दलित भारत में अस्पृश्य जातियों, स्त्रियों की दशा अति दलित की है। निराला ने इसीलिए 'भारत की विधवा' शीर्षक कविता में अंत में लिखा-''वह दलित भारत की विधवा है।'' निराला की कई कविताओं में दीन-दुखियों के प्रति करुणा और दबी हुई जातियों के उन्नयन का प्रयास है।

इसी चेतना को लेकर सुभद्राकुमारी चौहान ने एक ओजस्वी कविता लिखी थी। अछूतों के मंदिर में प्रवेश पर प्रतिबंध पर एक अछूत की तरह से वकालत करती हुई वह कहती है-

कह देती है किन्तु पुजारी, यह तेरा भगवान नहीं है
दूर नहीं मंदिर अछूत का और दूर भगवान कहीं है

अस्पृश्यता-उन्मूलन के लिए गाँधी द्वारा किए जा रहे सतत प्रयासों और आंदोलनों से विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने इसे ''युग-युग से चली आ रही दासता के बोझ से मुक्त कराने वाले दिव्य कार्य के रूप में देखा।'' प्रेमचंद ने लिखा-''वह ईश्वर के दरबार से हमारे उद्धार का बीड़ा लेकर आया है जो स्वाधीनता का वरदान लाकर जीर्ण और निराश माता को भेंट करेगा।''

30 जनवरी, 1948 को जब गाँधी की हत्या की गई, तब हिंदी के कवि बिलख पड़े और अनेक कवियों ने गाँधी पर कविताएँ लिखीं। दिनकर ने लिखा-

यह लाश मनुज का नहीं,
मनुजता के सौभाग्य विधाता की,
बापू की अर्थी नहीं,
यह अर्थी भारत-माता की।

जनकवि नागार्जुन ने 'शपथ' नामक एक लंबी कविता लिखी है, जिसकी कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है और जिससे पता चलता है कि उस वक्त के कवियों का कितना गहरा लगाव गाँधी से था-

तीन-तीन गोलियाँ, बाप रे
मुँह से कितना खून बहा है
महामौन यह पिता, तुम्हारा
रह-रह मुझे कुरेद रहा है

जो स्थिति नागार्जुन की थी, वह अन्य कवियों की भी थी। हरिवंश राय बच्चन, नरेंद्र शर्मा, भवानी प्रसाद मिश्र आदि ने तब विपुल संख्या में गाँधी के व्यक्तित्व पर कविताएँ लिखीं, यहाँ तक कि प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने भी 'आदि-पुरुष गाँधी', शीर्षक लंबी कविता लिखी।

वह सूर्य, कि जिसकी किरण-किरण में मुखरित जन-जन की वाणी
वह सूर्य, कि जिसका ज्योतिर्मय स्वर पी जीवित प्राणी-प्राणी

आजादी के बाद देश में लूट, भ्रष्टाचार, विषमता, लोलुपता बढ़ती गई। उसी दौर को धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग' कहा और मुक्तिबोध ने 'अंधेरे में' जैसी पतनशील दौर में कूड़े के ढेर पर बिठा दिए गए अर्थात् उपेक्षित कर दिए गए गाँधी का अद्भुत चित्र खींचा-''सर्दी में बोरे को ओढ़कर/कोई एक अपने/ हाथ-पैर समेटे/काँप रहा, हिल रहा-वह मर जाएगा।/वह मुख - अरे, वह मुख वे गाँधीजी।।/ इस तरह पंगु।। आश्चर्य।।'' मुक्तिबोध के शब्द गाँधी का एक सशक्त रेखाचित्र बनाते हैं-

एकाएक उठ पड़ा आत्मा का पिंजर
मूर्ति की ठठरी
नाक पर चश्मा, हाथ में डंडा
कंधे पर बोरा, बाँह में बच्चा।

दुष्यंत कुमार ने एक शेर कहा है-

कल नुमाईश में मिला जो चीथड़े पहने हुआ
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।

दुष्यंत कुमार के हिंदुस्तान और मुक्तिबोध के गाँधी के चित्र को मिलाकर देखिए, तो उसमें समानता नजर आएगी।

... इस प्रकार महात्मा गाँधी के विचारों ने हिंदी कवियों को उद्वेलित किया।

♦♦♦

हिंदी निबंध के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

सीताराम पाण्डेय

"शुक्ल जी की स्थापनाएँ शास्त्रबद्ध उतनी नहीं है, जितनी मौलिक। उन्होंने अपनी लोकभावना और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काव्यशास्त्र का संस्कार किया। इस दृष्टि से वे आचार्य कोटि में आते हैं। काव्य में लोक मंगल की भावना शुक्ल जी की समीक्षा की शक्ति भी है और सीमा भी। उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि आलोच्य कवि की मनोगति की पहचान में अद्वितीय है"

सम्पर्कः रामबाग चौड़ी, पो.–रमना, जिला–मुजफ्फरपुर–842002 (बिहार), मो. : 9386752177

हिंदी के समृद्ध लेखकीय परिदृश्य में उत्तर प्रदेश की धरती पर ऐसे अनेक साहित्य–मनीषियों ने जन्म लिया है, जिन्होंने अपनी सशक्त साहित्यिक प्रतिभा से देश के सांस्कृतिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों को सुदृढ़ बनाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', मैथिली शरणगुप्त, डॉ. हरिवंशराय 'बच्चन', प्रेमचन्द, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकारों का नाम उल्लेखनीय है। उन्हीं प्रख्यात साहित्यकारों के बीच आचार्यत्व, व्यक्तित्व एवं कवित्व के सारस्वत प्रतिमान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपनी सशक्त–सुन्दर शैली एवं समीक्षात्मक निबंधों के प्रौढ़ लेखन के लिए साहित्य–संसार में सतत् याद किए जाते रहेंगे।

श्री शुक्ल बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न बीसवीं शताब्दी के प्रमुख साहित्यकार थे। हिंदी–साहित्य में अपनी भावाभिव्यंजना के लिए उनके द्वारा विविध–विधाओं का प्रयोग किया गया। जिसमें कविता, कहानी, निबंध, इतिहास, आलोचनात्मक ग्रंथ जैसी विधाओं में उनकी मानवीय मूल्यान्वेषी प्रतिभा की शाश्वत–सार्थक अभिव्यक्ति अनुबद्ध है।

बतौर संपादक उनके द्वारा देश में निकलने वाले अनेक प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं के साथ–साथ कई ग्रन्थों का भी सुसंपादन किया गया। उनकी प्रकाशित–अप्रकाशित कृतियों की संख्या लगभग साठ से भी अधिक हैं। इस प्रकार उनका साहित्य एक विस्तृत भूमि की तरह फैला दिखाई पड़ता है।

आचार्य शुक्ल ने 04 अक्टूबर, 1884 ई. में उत्तर प्रदेश के बस्ती मंडलान्तर्गत 'अगोना' नामक गाँव में उस समय अपने जीवन और जगत के प्रथम प्रकाश का साक्षात्कार किया जिस काल में सम्पूर्ण राष्ट्र स्वतंत्रता–संग्राम के संक्रमण–काल से गुजर रहा था। जब शुक्ल जी की अवस्था 4 वर्षों की थी, उनके पिता पं. चन्द्रवली शुकल हमीरपुर जिले के राढ़ तहसील में सुपरवाइजर कानूनगो होकर आ गए। छः वर्ष की अवस्था में शुक्ल जी ने यही हिंदी–उर्दू

स्कूल में अध्ययन आरम्भ किया। परिवार में पिता के अतिरिक्त अन्य संबंधियों में भी साहित्यिकता पर्याप्त मात्रा में थी, जिससे उन्हें साहित्य-रचना का उपयुक्त संस्कार मिला। इस वातावरण के कारण बाल्यावस्था से ही शुक्ल जी के हृदय में साहित्य के अंकुर फूटने प्रारंभ हो गए थे।

शुक्ल जी की अवस्था जब नौ वर्षों की थी, तभी दुर्भाग्यवश उनके माथे से माताजी की छत्र-छाया छिन गई। उसके बाद उनके पिता पं. चन्द्रवली शुक्ल पुनः वैवाहिक-बन्धन में बँध गए। स्वमातृ-सुख से वंचित होने के साथ-साथ विमाता से मिलने वाले दु:ख-दर्द ने रामचंद्र के व्यक्तित्व को अल्पायु में ही बहुत परिपक्व बना दिया।

शुक्ल जी की प्रारंभिक शिक्षा मिर्जापुर में ही हुई। बाल्यकाल से ही शुक्लजी में अध्ययन के प्रति लगनशीलता दिखाई पड़ती थी। चौदह वर्षों की उम्र में उन्होंने 1898 ई. के अन्तर्गत मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त कर ली। इनके पश्चात् उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए मिर्जापुर के लन्दन मिशन स्कूल में उनका नामांकन कराया गया। 1901 ई. में उक्त विद्यालय से इन्टर की परीक्षा पास करने के पश्चात् पारिवारिक झंझटों के कारण आगे की पढ़ाई नहीं हो सकी।

उनके पिता की प्रबल इच्छा थी कि शुक्ल जी कचहरी में जाकर दफ्तर का काम सीखें, किन्तु शुक्ल जी और आगे की शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। अध्ययन की ओर उन्मुख देखकर उनके पिता जी ने उन्हें वकालत पढ़ने के लिए इलाहाबाद भेजा पर उनकी रुचि कानून की किताबों में नहीं लगी, क्योंकि उनके मन-मस्तिष्क में तो साहित्य का सौन्दर्य समाहित था। अत: परिणाम यह हुआ कि शुक्ल जी उसमें अनुत्तीर्ण रहे और अन्त में वे मिर्जापुर-मिशन स्कूल में ही ड्राइंग-टीचर के रूप में 1904 से 1908 तक बने रहे। उसी समय से उनके लेख देश के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे और धीरे-धीरे उनकी साहित्यिक प्रतिभा और यश के स्वर चारों तरफ मुखरित होने लगे। 'सरस्वती' पत्रिका में उनके लेख प्रकाशित हुए। कालान्तर में उनकी विद्वता से प्रभावित होकर 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' की व्यवस्था ने इन्हें पत्रिका का संपादक नियुक्त कर दिया, जिसको उन्होंने सफलतापूर्वक निष्पक्ष निवर्हन किया। 1908 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने श्री शुक्ल को 'शब्द-सागर' के सहायक संपादक का कार्यभार

सौंपा, जिसे उन्होंने सफलापूर्वक निर्वहन किया। 1903 से 1908 ई. तक वे 'आनन्द कादम्बिनी' के सहायक संपादक के पद पर कार्य किया।

डॉ. श्याम सुन्दर दास के शब्दों में—''शब्द सागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकांश श्रेय पं. रामचन्द्र शुक्ल को प्राप्त है।''

हिंदी का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिस पर शुक्ल जी ने नहीं लिखा हो। उनके निबंधों का संग्रह 'चिन्तामणि' दो भागों में प्रकाशित है। उनके द्वारा गम्भीर एवं साहित्यिक विषयों पर ही लेखनी उठाई गई है। श्रद्धा, उत्साह, घृणा आदि मनोवैज्ञानिक विषयों पर सफल निबंध लिखा गया। उनके निबंधों में विषय का प्रतिपादन अत्यंत सुन्दर ढंग से हुआ है।

शुक्ल जी का प्रिय विषय आलोचना है और उन्होंने अपने निबंधों में भी इसे स्थान दिया है। हिंदी निबंधों के क्षेत्र में शुक्ल जी का योगदान अमर है। शुक्ल जी से पूर्व भी निबंध लिखें जा चुके थे; किन्तु उनके विषय वही घिसे-घिसाये, पिटे-पिटाये थे। उनमें कोई नवीनता नहीं थी। शुक्ल जी ने इस क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित कर दी। उन्होंने नूतन विषयों पर निबंध लिखे और नई प्रणाली पर विषय को आगे बढ़ाने का उदाहरण प्रस्तुत किया। इनके निबंधों में भाव है, पांडित्य का प्रदर्शन नहीं। शुक्ल जी के कथन में अस्पष्टता नहीं आने पाई है और प्रत्येक बात स्पष्ट हो

जाती है। वे कभी भी अनावश्यक भूमिकाएँ नहीं बाँधते हैं और न बेमतलब चर्चा ही करते हैं। इस दृष्टि से आधुनिक गद्य के वे बिहारीलाल हैं।

शुक्ल जी की शैली पर उनके व्यक्तित्व की पूरी-पूरी छाप है। यही कारण है कि प्रत्येक वाक्य पुकार कर कह देता है कि यह उनका है। सामान्य रूप से शुक्ल जी की शैली अत्यन्त प्रौढ़ और मौलिक है। इसमें 'गागर में सागर' पूर्ण रूप से विद्यमान है। शुक्ल जी की शैली के मुख्यत: तीन रूप हैं—

आलोचनात्मक शैली—शुक्ल जी ने आलोचनात्मक निबंध इसी शैली में लिखा है। इस शैली की भाषा गम्भीर है। उनमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता, वाक्य छोटे-छोटे संयत और मार्मिक हैं। भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है कि उसको समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।

गवेषणात्मक शैली—इस शैली में शुक्ल जी ने नवीन खोजपूर्ण निबंधों की रचना की है। आलोचनात्मक शैली की अपेक्षा यह शैली अधिक गम्भीर और दुरूह है। वाक्य बड़े-बड़े हैं और मुहावरों का नितान्त अभाव है।

भावात्मक शैली—शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक निंबंध भावात्मक शैली में लिखे गए हैं। यह शैली नाट्य-काव्य-सा आनन्ददायक है। इस शैली की भाषा व्यावहारिक है। भावों की आवश्यकतानुसार छोटे और बड़े दोनों ही प्रकार के वाक्यों को अपनाया गया है। बहुत-से वाक्य तो सूक्ति रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—''बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है।''

इसके अतिरिक्त शुक्ल जी के निबंधों में निगमन पद्धति, अलंकार योजना, तुकदार शब्द, हास्य, व्यंग्य, मूर्तिर्मत्ता आदि अन्य शैलीगत विशेषताएँ भी मिलती हैं।

शुक्ल जी की कृतियाँ इस प्रकार हैं—

मौलिक कृतियाँ—आलोचनात्मक ग्रन्थ—सूर, तुलसी, जायसी पर की गई आलोचनाएँ, काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनावाद, रस-मींमासा आदि शुक्ल जी की आलोचनात्मक रचना है। निबंधात्मक ग्रन्थों में—दो भागों में संग्रहीत 'चिन्तामणि' के निबंधों के अतिरिक्त शुक्ल जी ने कुछ अन्य निबंध भी लिखे हैं, जिनमें 'मित्रता', 'अध्ययन' आदि सामान्य विषयों पर लिखे गए निबंध हैं।

ऐतिहासिक ग्रन्थ—'हिंदी साहित्य का इतिहास' उनका अनूठा ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं।

अनुदित कृतियाँ—शुक्ल जी की अनुदित कृतियाँ कई हैं। 'शशांक' उनका बंगला से अनुदित उपन्यास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी से 'विश्वप्रपंच', 'आदर्श जीवन', 'मेगस्थनीज का भारत वर्षीय वर्णन', 'कल्पना का आनन्द' आदि रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया।

संपादित कृतियाँ—संपादित ग्रन्थों में 'हिंदी शब्द सागर नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भ्रमरगीतसार, सूर, तुलसी, जायसी ग्रन्थावली उल्लेखनीय है।

सैद्धान्तिक आलोचनात्मक निबंध—'कविता क्या है।' 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था', साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्रवाद आदि निबंध सैद्धान्तिक आलोचना के अन्तर्गत आते हैं। आलोचना के साथ-साथ अन्वेषण और गवेषणा करने की प्रवृत्ति भी शुक्ल जी में पर्याप्त मात्रा में है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' उनकी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है।

व्यावहारिक आलोचनात्मक निबंध—'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'तुलसी का भक्तिमार्ग', मानस की धर्मभूमि आदि निबंध व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्गत आते हैं।

मनोवैज्ञानिक निबंध—मनावैज्ञानिक निबंधों में 'करुणा', 'श्रद्धा', 'ग्लानि', 'क्रोध', 'लोभ', 'प्रीति' आदि भावों तथा मनोविकारों पर लिखे गए निबंध आते हैं। शुक्ल जी के ये मनोवैज्ञानिक निबंध सर्वथा मौलिक हैं। उनकी भाँति किसी भी अन्य लेखक ने उपर्युक्त विषयों पर इतनी प्रौढ़ता के साथ नहीं लिखा। शुक्ल जी के निबंधों में उनकी अभिरुचि, विचारधारा, अध्ययन आदि का पूरा-पूरा समावेश है। ये लोकादर्श के पक्के समर्थक थे। इस समर्थन की छाप उनकी रचनाओं में सर्वत्र मिलती है।

शुक्ल जी के गद्य साहित्य की भाषा खड़ी बोली है और उनके प्राय: दो रूप मिलते हैं।

(i) **क्लिष्ट और जटिल**—उनमें गम्भीर विषयों के वर्णन तथा आलोचनात्मक निबंधों की भाषा का क्लिष्ट रूप मिलता है। विषय की गम्भीरता के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी है। गम्भीर विषयों को व्यक्त करने के लिए जिस संयम और शक्ति

की आवश्यकता होती है, वह पूर्णत: उनमें विद्यमान है। अत: इस प्रकार की भाषा क्लिष्ट और जटिल होते हुए भी स्पष्ट है। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है।

(ii) **सरल और व्यावहारिक—** भाषा का सरल और व्यावहारिक रूप शुक्ल जी के व्यावहारिक निबंधों में मिलता है। इसमें हिंदी के प्रचलित शब्दों को ही अधिक ग्रहण किया गया है। यथा स्थान उर्दू और अंग्रेजी अतिप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा को अधिक सरल और व्यावहारिक बनाने के लिए शुक्ल जी ने तड़क-भड़क, अटकल-पच्चू आदि ग्रामीण बोल-चाल के शब्दों को भी अपनाया है तथा नौ दिन चले अढ़ाई कोस, जिसकी लाठी उसकी भैंस, पेट फूलना, काँटों पर चलना आदि कहावतों व मुहावरों का भी प्रयोग निस्संकोच होकर किया है।

शुक्ल जी का दोनों प्रकार की भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वह अत्यंत संयत, परिमार्जित, प्रौढ़ और व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण निर्दोष है। उसमें रंचमात्र भी शिथिलता नहीं। शब्द मोतियों की भाँति वाक्यों के सूत्र में गूँथे हुए हैं। एक भी शब्द निरर्थक नहीं, प्रत्येक शब्द का अपना पूर्ण महत्व है।

शुक्ल जी हिंदी के शायद पहले समीक्षक हैं, कि जिन्होंने वैविध्यपूर्ण जीवन के ताने-बाने में गुंफित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों का साक्षात्कार करने का वास्तविक प्रयत्न किया। उन्होंने भाव या रस को काव्य की आत्मा माना है। पर उनके विचार से काव्य का अन्तिम लक्ष्य आनन्द नहीं बल्कि विभिन्न भावों के परिष्कार, प्रसार और सामंजस्य द्वारा लोकमंगल की प्रतिष्ठा है। उनकी दृष्टि से महान काव्य वह है, जिससे जीवन की प्रक्रियाशीलता उजागर हुई हो। इसे उन्होंने काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था कहा है। शुक्ल जी की समस्त मौलिक विचारण लोक जीवन के मूर्त्त आदर्शों से प्रतिबद्ध है। हमारे हृदय का सीधा लगाव प्रकृति के गोचर रूपों से है। इसलिए कवि का सबसे पहला और आवश्यक काम बिंब ग्रहण या चित्रानुभव करना है। अत: जीवन में और काव्य में किसी तरह की एकांगिता उन्हें अभीष्ट नहीं।

शुक्ल जी की स्थापनाएँ शास्त्रबद्ध उतनी नहीं है, जितनी मौलिक। उन्होंने अपनी लोकभावना और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काव्यशास्त्र का संस्कार किया। इस दृष्टि से वे आचार्य कोटि में आते हैं। 'काव्य में लोक मंगल की भावना' शुक्ल जी की समीक्षा की शक्ति भी है और सीमा भी। उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि आलोच्य कवि की मनोगति की पहचान में अद्वितीय है।

शुक्ल जी के मनोविकार संबंधी निबंध परिणत प्रज्ञा की उपज है। इनमें भावों का मनोवैज्ञानिक रूप स्पष्ट किया गया है तथा मानव जीवन में उनकी आवश्यकता, मूल्य और महत्व का निर्धारण हुआ है। भावों के अनुरूप ही मनुष्य का आचरण ढलता है—इस दृष्टि से शुक्ल जी ने उनकी सामाजिक अर्थवत्ता का मनोयोगपूर्वक अनुसंधान किया। उन्होंने मनोविकारों के निषेध का उपदेश देने वालों पर जबर्दस्त आक्रमण किया और मनोवेगों के परिष्कार पर जोर दिया। ये निबंध व्यावहारिक दृष्टि से पाठकों को अपने आपको और दूसरों के सही ढंग से समझने में मदद देते हैं तथा उन्हें सामाजिक दायित्व और मर्यादा का बोध कराते हैं।

उनके गद्य में आत्मविश्वासजन्य दृढ़ता की दीप्ति है। उनमें यथा तथ्यता और संक्षिप्तता का विशिष्ट गुण पाया जाता है। उनके विवेचनात्मक गद्य ने हिंदी गद्य पर व्यापक प्रभाव डाला है।

चिन्तन प्रधान निबंधों में लेखक किसी विषय पर सुसंबद्ध रीति से अपने विचार विशेष दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करता है। रामचन्द्र शुक्ल का 'उत्साह' शीर्षक विचारात्मक निबंध का सुन्दर उदाहरण है। उन्होंने जिन संस्मरणों का संकेत अपने विचार प्रधान निबंधों में किया है, वे उनके विषय संबंधी दृष्टिकोण को ही सूचित करते हैं। दर्शन के क्षेत्र में भी शुक्ल जी का 'विश्वप्रपंच' उपलब्ध है। यह पुस्तक 'रिडल ऑफ दि यूनिवर्स' का अनुवाद है, परन्तु इसकी विस्तृत भूमिका आपका मौलिक लेखन है।

रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक कहानी 1903 ई. में लिखी गई थी। कुछ विद्वान इस कहानी को हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं।

शुक्ल जी का ''हिंदी साहित्य का इतिहास'' हिंदी का गौरव ग्रन्थ है। साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया काल-विभाजन, साहित्यिक धाराओं का सार्थक निरूपण तथा कवियों की विशेषता बोधक समीक्षा इनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

सन् 1919 ई. में श्री शुक्ल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ बाबू श्याम सुन्दर दास के निधनोपरान्त 1937 ई. में हिंदी विभागाध्यक्ष बन गए और 1941 ई. तक लगातार उस पद पर बने रहे। लेकिन नियति की निरंकुश नियत कुछ और ही थी। अचानक असमय में ही उन महाकवि, वाणी के वरद् पुत्र, महामानव का उक्त पद पर रहते हुए 02 फरवरी 1941 ई. को हृदयगति रुक जाने के कारण महाप्रयाण हो गया।

♦♦♦

हिंदी के अनन्य साधक फादर कामिल बुल्के

डॉ. विभा खरे

फादर कामिल बुल्के जैसे विदेशी हिंदी विद्वानों के बारे में ही शायद तुलसीदास ने लिखा है—उपजहिं अनत, अनत छवि लहहीं। उत्पन्न कहीं होते हैं, शोभा कहीं और पाते हैं। उनका जन्म भले ही पश्चिम में हुआ है पर उनका कर्मठ जीवन पूर्व के प्रीतिकर सम्मेलन तथा ईसाई और भारतीय परंपराओं के मैत्रीपूर्ण संवाद का प्रतीक है।

सम्पर्क: जी–9, सूर्यपुरम, नन्दनपुरा, झांसी—284003
E-mail: vibhakhare12345@gmail.com

हिंदी के अनन्य साधक फादर कामिल बुल्के का जन्म 2 सितंबर 1909 को बेल्जियम के, फ्लैण्डर्स प्रांत के रम्सकपेल गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम अदोल्फ और माता का नाम मारिया बुल्के था। अभाव और संघर्ष भरे अपने बचपन के दिन बिताने के बाद बुल्के ने कई स्थानों पर पढ़ाई जारी रखते हुए लुवेन विश्वविद्यालय लिसेवेगे से वर्ष 1930 में इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी की। बाद में वे जेसुइट सेमिनरी में लैटिन भाषा पढ़ने के बाद ब्रदर बने। बुल्के ने अपना जीवन एक संन्यासी के रूप में बिताने का निश्चय किया और कई महत्त्वपूर्ण संस्थाओं में अध्ययन करने के बाद भारत आ गए। यहाँ उन्होंने विज्ञान के अध्यापक के रूप में सेंट जोसेफ कॉलेज, दार्जिलिंग और येसू संघियों के मुख्य निवास स्थान मनरेसा हाउस, राँची में अपना प्रवास किया और कई संस्थाओं से जुड़े रहने के बाद 1941 में पुरोहित बने। फादर बने। फादर कामिल बुल्के ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1947 में एम.ए. हिंदी किया तथा 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' विषय पर डी. फिल. की उपाधि प्राप्त की। वे 1950 से 1977 तक संत जेवियर कॉलेज, राँची में हिंदी और संस्कृत के विभागाध्यक्ष रहे। उनकी हिंदी और अंग्रेजी की महत्त्वपूर्ण रचनाओं में 'रामकथा और तुलसीदास', 'मानस–कौमुदी' तथा ईसाई धार्मिक साहित्य दर्शन पर केन्द्रित 'ईसा: जीवन और दर्शन', 'एक ईसाई की आस्था' उल्लेखनीय है।

'अंग्रेजी–हिंदी कोश' और बाइबिल से संबंधित कई अनूदित कृतियों द्वारा अपनी उदार दृष्टि, तपसाधना और समर्थित जीवन के कारण फादर कमिल बुल्के ने भारत और पश्चिमी जगत को भावनात्मक बिंदु पर जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया तथा अध्ययन और मनन द्वारा अपनी रचना आस्था को निरंतर मजबूत करते रहे। कई संस्थाओं से सम्बद्ध फादर कामिल बुल्के को भारत सरकार ने 1974 में पद्मभूषण से सम्मानित किया।

उन्होंने अंग्रेजी–हिंदी कोश का निर्माण किया। जिसे पढ़कर अनेक लोगों ने हिंदी सीखी। आज भी अनेक कार्यालयों में इसी कोश की मदद से हिंदी का अनुवाद कार्य आसानी से किया जाता है। इस हिंदी पखवाड़े में हिंदी के रूप में इस अनन्य साधक को स्मरण करना जरूरी है। हिंदी के जाने माने लेखक इलाचंद्र जोशी ने

कोश का महत्व स्वीकार करते हुए लिखा है कि ''यह कोश न केवल हिंदी और अंग्रेजी के नए पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, वरन हम जैसे पुराने घिसे हुए लेखकों के लिए भी बड़े काम की चीज सिद्ध होगा। स्वयं मुझे अपने निबंधों के लेखन में इससे बड़ी सहायता मिली है।''

अज्ञेय ने फादर बुल्के को 'ताताचार्य' कहा था जो रेवरेन्ड फादर का सही अनुवाद है। प्रभाकर क्षोत्रीय ने आपको हिंदी के 'तरुतात' कहा है। निचय ही इस ताततरू की गहरी जड़ों और छाया में ही हिंदी का पौधा लहलहा रहा है। फादर कामिल बुल्के जैसे विदेशी हिंदी विद्वानों के बारे में ही शायद तुलसीदास ने लिखा है—उपजहिं अनत, अनत छवि लहहीं। उत्पन्न कहीं होते हैं, शोभा कहीं और पाते हैं। उनका जन्म भले ही पश्चिम में हुआ है पर उनका कर्मठ जीवन पूर्व के प्रीतिकर सम्मेलन तथा ईसाई और भारतीय परंपराओं के मैत्रीपूर्ण संवाद का प्रतीक है।

फादर ने अपनी अभिव्यक्ति का मूल माध्यम हिंदी को ही बनाया था। उनके अधिकांश सर्वोत्तम लेखन की भाषा हिंदी है। उनकी विश्वप्रसिद्ध रचना, जो वर्षों के परिश्रम के बाद लिखी गई, 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' के बारे में उनके गुरु और प्रसिद्ध विद्वान डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है—''यह ग्रंथ वास्तव में रामकथा संबंधी समस्त सामग्री का विश्वकोश कहा जा सकता है। वास्तव में यह खोजपूर्ण रचना अपने ढंग की पहली रचना है। हिंदी क्या किसी भी यूरोपीय अथवा भारतीय भाषा में इस प्रकार का कोई दूसरा अध्ययन उपलब्ध नहीं है।'' वे मृत्यु के कुछ महीने पहले तक बाइबिल के अनुवाद में लगे हुए थे। जून, 1982 में उनके दाहिने पैर की उंगली में गैंग्रीन हो गया। पहले राँची के मांडर और फिर पटना के कुर्जी के मिशन अस्पताल में उनका इलाज हुआ। कुर्जी में ही गैंग्रीन उनके दाहिने पैर में इतनी तेजी से फैला कि मिशन के अधिकारी चिंतित हो उठे और उन्होंने उनको अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली में 8 अगस्त को भर्ती कराया। उन दिनों एक ही पीड़ा उन्हें थी कि बाइबिल का अनुवाद अधूरा रह गया है। लेकिन मृत्यु की पदचाप भी सुनाई दे रही थी। उन्होंने 15 अगस्त 1982 को फादर प्रोविंशियल पास्कल तोचना से कहा—''फादर। मैं ईश्वर की इच्छा को सम्पूर्ण हृदय से ग्रहण करता हूँ और उनके पास जाने को तैयार हूँ। अब मुझे बाइबिल का अनुवाद पूरा करने की चिंता नहीं है। प्रभु बुलाते हैं, तो मैं प्रस्तुत हूँ।''

17 अगस्त 1982 को सुबह 8 बजे उनका निधन हो गया और 18 अगस्त को दिल्ली के कश्मीरी गेट के निकॉलसन कब्रगाह में

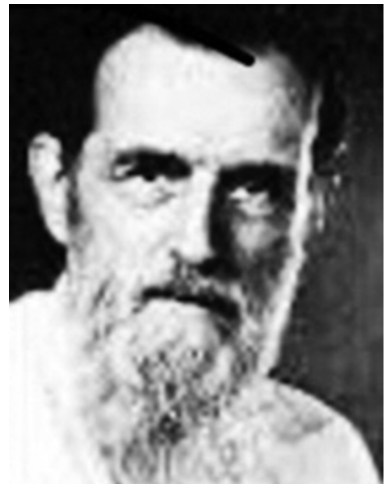

उनको दफना दिया गया। रामकथा और तुलसी का एक अनन्य उपासक सदा के लिए सो गया। 1950 में भारतीय नागरिक होने के बाद उन्होंने तन, मन, धन से उस देश की सेवा की, जो उनकी मातृभूमि तो नहीं था, पर उनकी मातृभूमि से भी अधिक था। वे सब धर्मावलंबियों का आदर करते थे, सब धर्मावलंबी उनका आदर करते थे, वे सच्चे अर्थों में ईसाई थे, पर उन्हें अपने भारतीय होने पर भी गर्व था। भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं में वे गहरे-रचे बसे थे। एक विदेशी पौधा हमारी मिट्टी में आकर रच-बस गया था। उस वटवृक्ष ने अपनी अनेक शाखाओं से सैंकड़ों हिंदी प्रेमियों को छाया दी।

वे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और प्राच्य विद्या संस्थान बड़ौदा के आजीवन सदस्य थे। 1974 में उचित ही भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत कियाा। बलिष्ठ शरीर के गौरवपूर्ण और लंबी कदकाठी के स्वामी फादर दाढ़ी और सफेद चोगे में भव्य लगते थे, पर उतने निरोग कभी नहीं रहे। बचपन से उन्हें कम सुनाई पड़ता था। दमा और पेप्टिक अल्सर सहित कई बीमारियों ने उनमें घर बना लिया था। उच्च रक्तचाप और हृदयरोग भी छूटता न था।

फिर भी वे राँची की सड़कों पर साइकिल लेकर निकल जाते और स्थानीय गरीब-गुरबों का हाल-चाल पूछते। सामर्थ्य अनुसार उनकी मदद करते। उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाते। शाम को गोधूलि के बाद ही लौटते थे। स्टेट्समैन की वर्ग पहेली हल करने या ब्रिज खेलने में उनका मन लगता था। वे भारतीयों से भी अधिक भारतीय थे। एक अवसर पर उन्होंने आलोचना पत्रिका में लिखा था, ''भगवान के प्रति धन्यवाद, जिसने मुझे भारत भेजा और भारत के प्रति धन्यवाद जिसने मुझे इतने प्रेम से अपनाया।''

♦♦♦

संस्कार व नैतिकता के बिना शिक्षा अर्थहीन

कंचन शर्मा

"भारत के महान् शिक्षाविद, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जिनका जन्मदिन शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है उनके अनुसार शिक्षक होने का अधिकारी वही व्यक्ति है, जो अन्य से अधिक बुद्धिमान व विनम्र हो।"

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हिटलर के यातना शिविर से जान बचाकर लौटे एक प्रिंसिपल ने अपने शिक्षकों के नाम एक पत्र लिखा, ''प्यारे शिक्षकों, मैं एक यातना शिविर से जैसे-तैसे बचकर आने वाला व्यक्ति हूँ। वहाँ मैंने जो कुछ देखा, वह किसी को देखना नहीं चाहिए था। वहाँ के गैस चैंबर्स विद्वान इंजीनियरों ने बनाए थे। बच्चों को जहर देने वाले लोग सुशिक्षित चिकित्सक थे। महिलाओं और बच्चों को गोलियों से भूनने वाले कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त स्नातक थे। इसलिए मैं, शिक्षा को संदेह की नजरों से देखने लगा हूँ। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप अपने छात्रों को 'मनुष्य' बनाने में सहायक बनें। आपके प्रयास ऐसे हों कि कोई भी विद्यार्थी दानव न बने।''

उक्त सामाजिक स्थिति के विवेचन से यह स्पष्ट है कि आधुनिक शिक्षा पद्धति में उन उद्देश्यों की पूर्ति प्रतीत नहीं होती जिसमें मानव में मनुष्यता के बीज अर्थात् श्रेष्ठता के विचार आरोपित किए जा सकें, क्योंकि आजकल के माहौल को देखते हुए यह पत्र उतना ही प्रासंगिक है जितना द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान था। सामाजिक भेदभाव, हत्या, हिंसा, अंधविश्वास, बलात्कार, नारी व बाल शोषण, अस्वच्छता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, नाना प्रकार के व्यभिचार यह सब कुकृत्य शिक्षित वर्ग ही तो कर रहा है। कारण स्पष्ट है कि शिक्षा में कोई दरीच तो आई है जिसके बगैर नैतिक पतन का ग्राफ बढ़ता जा रहा है। देखा जाए तो शिक्षा और संस्कार एक-दूसरे के पूरक है। संस्कार घर, परिवार व शिक्षक वर्ग से मिलते हैं। यद्यपि शिक्षा के बिना संस्कार की परिकल्पना नहीं की जा सकती, इसलिए शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें विद्यार्थियों को अनुशासन, आज्ञाकारिता और विनम्रता का समावेश हो। शिक्षा के साथ व्यावहारिक जानकारी व उसके अनुरूप आचरण को ही संस्कार कहा जाता है। यदि शिक्षा से संस्कार, चरित्र व नैतिकता निकल जाए तो शिक्षा शून्य हो जाती है।

आज के शिक्षित व्यक्तियों की तुलना गाँव के चालीस वर्ष पहले के अनपढ़ व्यक्तियों से की जाए तो वे एक-दूसरे से प्यार करने वाले, सुख-दु:ख बाँटने वाले, आदर सम्मान देने वाले,

सम्पर्क: सेट नं. 11, प्रोफेसर्ज कॉलोनी, हि. प्र. विश्वविद्यालय, समर हिल, शिमला—171005

मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण थे। जहाँ वर्तमान भौतिकता के प्रभाव में नित्य नए अपराधों का उदय हो रहा है। आज की गर्हित सामाजिक स्थिति वर्तमान विसंगतियों का परिणाम है, क्योंकि यहाँ हृदयविहीन, भावशून्य मशीनी मानव बनाने की शक्ति तो है परन्तु मानवनिर्मात्री शक्ति नहीं।

हमारे समाज में एक बच्चे के जीवन में एक शिक्षक का स्थान माता-पिता के बाद लेकिन ईश्वर से पहले आता है। मेरी दृष्टि में ऐसी महत्ता समाज में किसी और पेशे की नहीं है। भारतीय समाज शिक्षा और संस्कृति के मामले में आदिकाल से ही बहुत समृद्ध रहा है। यूँ भी भारतीय संस्कृति का एक सूत्र वाक्य आज भी प्रचलित है–'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इसका अर्थ है, अन्धेरे से उजाले की ओर जाना। अंधकार से प्रकाश की इस यात्रा में शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी व समाज की बड़ी भूमिका है।

भारत के महान् शिक्षाविद, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जिनका जन्मदिन शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है उनके अनुसार शिक्षक होने का अधिकारी वही व्यक्ति है, जो अन्य से अधिक बुद्धिमान व विनम्र हो। उनका कहना था कि उत्तम अध्यापन के साथ-साथ शिक्षक का विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार व स्नेह उसे सुयोग्य शिक्षक बनाता है। मात्र शिक्षक होने से कोई योग्य नहीं हो जाता बल्कि उसे यह गुण अर्जित करना होता है। शिक्षा में दोहरी क्षमता होती है। यह विद्यार्थियों को गढ़ने के अलावा अध्यापक को भी गढ़ती है। शिक्षा मात्र ज्ञान को सूचित कर देना नहीं होती अपितु इसका उद्देश्य एक उत्तरदायी नागरिक का निर्माण करना है। शिक्षा के मन्दिर कहे जाने वाले विद्यालय निश्चित ही ज्ञान के शोध, संस्कृति के तीर्थ एवं स्वतंत्रता के संवाहक होते हैं।

नेलसन मंडेला ने कहा कि 'शिक्षा संसार का सबसे शक्तिशाली हथियार है। 'स्वामी विवेकानंद' के अनुसार "मनुष्य में जो सम्पूर्णता गुप्त रूप से विद्यमान है उसे प्रत्यक्ष करना ही शिक्षक का काम है।"

हम इतिहास के पन्ने पलटकर देखें तो ऐसे पौराणिक प्रमाण मिल जाते हैं जिसमें गुरु-शिष्य परंपरा के तहत शिक्षक, निस्वार्थ रूप से शिक्षण परंपरा का वहन कर परस्पर सुदृढ़ संबंध स्थापित करता था। साथ ही शिष्य भी गुरु को भगवान का दर्जा देता था। शिक्षा, संस्कार व नैतिकता से ओत-प्रोत थी, मगर आज के इस भौतिकवादी युग में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका बदल रही है, ऐसे में शिक्षक, शिक्षा व शिक्षार्थी भला केसे अछूते रहते। यही नहीं परिवार व माता-पिता की भूमिका में भी बड़ा-बदलाव आया है।

बच्चे की पहली पाठशाला उसका परिवार होती है। परिवार में दादा-दादी, नाना-नानी व अन्य रिश्तों से वह संस्कार, नैतिकता, अपनी संस्कृति व मेल जोल की भावना सीखता है। लेकिन पिछले कुछ दशकों से एकल परिवारों व एकल बच्चे के चलन से हम लोगों ने बच्चों से यह पारिवारिक पाठशाला छीन ली है। जहाँ घर पर बच्चों की हर गतिविधि पर नजर रखने वाले अनेक सदस्य होते थे वहीं आज एकाकी होकर बच्चा केवल इंटरनेट की आभासी दुनिया में समा चुका है, जहाँ उसे हर तरह का अपराध, व्यभिचार, हिंसा, सेक्स परोसा जा रहा है। ऐसे में बच्चा, युवा बनकर देश को वही देगा जो उसने सीखा है। इसके लिए अभिभावक वर्ग व समाज जिम्मेवार है, जो बच्चों को संस्कार, प्यार व दुलार से पलित-पोषित करने के बजाए उन्हें एकाकीपन के बीहड़ में धकेल रहा है जहाँ वह "ब्लू व्हेल" जैसी प्राणघातक क्रीड़ाओं से दो-चार हो रहा है। इस दृष्टि से समाज को एक बार फिर विमर्श करने की आवश्यकता है। हमें अपनी पारिवारिक संस्था को फिर से पुनर्जीवित करना होगा वरना शिक्षार्थी अकेलेपन में अनैतिकता का वरण कर समाज को गर्त में धकेलते जाएँगे।

शिक्षा की बात करें तो, अगर किसी भी राष्ट्र की शिक्षा नीति अच्छी है, उस देश को आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक सकता। देश का सांस्कृतिक विकास शिक्षा पर ही निर्भर करता है। वर्तमान में पढ़े-लिखे समाज का अपराधों में संलिप्त होना, युवाओं का नशे की ओर रुख करना व अनैतिक कार्यों को अंजाम देना शिक्षा की गुणवत्ता में आई गिरावट के कारण ही है। उस पर शिक्षा का व्यवसायीकरण व बाजारीकरण देश के समक्ष बड़ी चुनौती है। शिक्षक व माता-पिता ये दोनों वर्ग बच्चों का लालन-पालन, पोषण व शिक्षण मात्र अच्छे अंक लेकर अच्छी नौकरी पा लेने तक ही कर रहे हैं। अच्छे नंबरों का दबाव विद्यार्थियों को आत्महत्या जैसे अनैतिक कदम उठाने की ओर धकेल रही है। शिक्षा में नैतिक मूल्यों के प्रति कोई ध्यान ही नहीं दे रहा है। बच्चों के आध्यात्मिक, नैतिक, मानसिक विकास की बात कहीं देखने को नहीं मिलती। ऐसे में संस्कार व नैतिकता के अभाव में अर्जित शिक्षा से शिक्षित मनुष्य अपराधों को अंजाम देने में गुरेज नहीं

करता। शिक्षा में संस्कार व नैतिकता आदि को परिपूर्णता के साथ न केवल स्थान देने की आवश्यकता है अपितु उसे कार्यान्वित करने की भी जरूरत है।

शिक्षकों के गिरते स्तर को हमारी फिल्मों जैसे 'थ्री इडियट्स' और 'मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.' में देखा जा सकता है। शिक्षकों द्वारा शिष्यों से भेदभाव करना, छात्राओं के साथ अभद्र व्यवहार करना, जानवरों की भाँति पीटना या सजा देना, पैसों को ही अपना लक्ष्य बनाना इत्यादि भावनाओं के कारण विद्यार्थियों का शिक्षकों के प्रति आदर घटा है और दूसरी ओर शिष्य भी मर्यादाहीन व चरित्रहीन बनकर शिक्षक-शिष्य के मधुर संबंधों की छवि को खराब कर रहे हैं। छात्रों द्वारा नकल, बेअदबी, हिंसा की खबरें मन को कचोटती रहती है आज शिक्षक व शिक्षार्थी वर्ग एक ऐसी रूढ़िवादिता से ग्रसित हो रहा है जहाँ न पहले जैसे शिक्षक हैं न ही शिक्षकों के प्रति विद्यार्थियों का भाव हैं। दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली के साथ हमारी महत्वाकांक्षाएँ, विवेकशून्यता, अकर्मण्यता, अनैतिक आचरण आज के बदले हुए परिदृश्य के लिए जिम्मेवार हैं। अति महत्वाकांक्षी लोग विद्यार्थियों को गलत दिशा में ले जा रहे हैं कई संस्थान इसके उदाहरण है। अकर्मण्यता, सामाजिक असमानता व अंधविश्वास को हम 'राम-रहीम' के तौर पर देख रहे हैं। नैतिकता व संस्कारों के क्षरण ने विश्व के अनेक देशों को आतंकवाद व युद्ध जैसी स्थितियों की राह पर खड़ा कर दिया है। नक्सलवाद भी इसी सामाजिक असमानता व अनैतिकता का दुष्परिणाम है।

इसी शृंखला में शिक्षकों की समस्याओं को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। अध्यापक वर्ग के ऊपर तरह-तरह के कार्यों का बोझ उसे शिक्षार्थियों को पूरा समय न देने का कारण है। सरकारी स्कूल आंकड़ा बटोरने वाली एजेंसी बनकर रह गए हैं। ऐसे माहौल में शिक्षक के काम के बारे में अंदाजा लगाया जा सकता है कि वह पूरे शैक्षिक सत्र के दौरान किन-किन गैर-शैक्षणिक कार्यों में उलझा रहता है जैसे मतदाता पहचान पत्र बनाना, जनगणना, पशुगणना आदि। इस तरह शिक्षकों की भूमिका में नए-नए काम भौतिक विकास की रणनीति के तहत शामिल हो रहे हैं, जिससे शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता जा रहा है। सरकारी स्कूलों के अलावा निजी स्कूलों के अध्यापकों की अपनी समस्याएँ हैं। उनके ऊपर हर वक्त प्रदर्शन का दबाव रहता है, वहीं दूसरी ओर छात्रों के ऊपर वीकली टैस्ट व रैंक का दबाव रहता है। छात्र जीवन में जहाँ पर बच्चों की पिटाई को एक स्वीकार्य के रूप में देखा व जिया जाता था आज वहीं पर शिक्षकों से विपरीत व्यवहार की आशा रखी जाती है। प्राइवेट स्कूल, कॉलेजों में, बच्चों को मात्र अच्छे नंबर दिलवाने की होड़ है ताकि उनके शिक्षा के व्यापार केन्द्र की जड़ें मजबूत रहें। वहाँ पर भी शिक्षकों पर अनावश्यक कार्यों का बोझ रहता है। कहीं-न-कहीं शिक्षक स्वयं को सामाजिक शोषण, दबाव, भय आदि से घिरा हुआ महसूस करने लगा है व अपने उत्तरदायित्वों से पलायन करने लगा है। सोशल मीडिया व इलेक्ट्रॉनिक क्रांति के चलते छात्रों की गतिविधियों पर नजर रखना भी शिक्षकों को कठिन होता जा रहा है। भारत की वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में अध्यापक की कल्पना चिंतन करने की बजाए चिंतित रहने वाले मनुष्य के रूप में की जा सकती है। ऐसे माहौल में वह इतना ही काम करना चाहता है ताकि काम चलता रहे। उनको प्रेरित करने वाला माहौल देने के लिए शिक्षाविदों, प्रशासन व समाज के प्रबुद्ध लोगों को आगे आना होगा। भले ही शिक्षक वर्ग बदलाव व समय के घूमते पहिए के साथ सफलता की तमाम कहानियाँ लिखना चाहता हो मगर बदलाव के साथ उसके पेशे में भी बदलाव आया है।

आज परिवार, पाठशाला व समाज तीनों के बदलते स्वरूप पर गंभीर विमर्श की आवश्यकता है। इसके लिए कुछ बुनियादी सवालों से जूझना होगा। हमें प्रत्येक बच्चे को एक अच्छा डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक या अधिकारी बनाने के साथ ही उसे नैतिक शिक्षा व संस्कार से ओत-प्रोत कर एक अच्छा इन्सान भी बनाना है। माता-पिता व शिक्षकों को संसार के सारे बच्चों को एक सुन्दर व सुरक्षित भविष्य देने के लिए व समस्त संसार में एकता व शान्ति के बीज बोने के लिए बच्चों के कोमल मन-मस्तिष्क में भारतीय संस्कार, संस्कृति व सभ्यता के रूप में 'वसुधैव कटुम्बकम' के विचार रूपी बीज बचपन से ही बोने चाहिए। तभी हम किसी भी बालक को विश्व नागरिक व मानव के रूप में तैयार कर सकते हैं।

♦♦♦

भिखारी ठाकुर: भोजपुरी रंगमंच के शेक्सपियर

अंशु त्रिपाठी 'अनुजा'

भिखारी ठाकुर ने अपने बिदेसिया नाटक में जीव, ईश्वर और माया का एक अनोखा रूपक तैयार किया है। भारतीय वाङ्मय में यूँ तो ईश्वर की कल्पना अर्द्धनारीश्वर के रूप में जरूर की गई है लेकिन जीव और माया के संबंध में किसी भी संत, कवि ने ईश्वर की कल्पना नारी रूप में नहीं की है। वैसे भी बिदेसिया नाटक का मूल स्वर त्रासदी और करुणा है।

एक आम आदमी के सतह से शिखर तक की बेजोड़ मिसाल हैं भिखारी ठाकुर। बहुत कम लोग होते हैं जो जीते-जी विभूति बन जाते हैं। दरअसल, भिखारी ठाकुर की जीवन-यात्रा भिखारी से ठाकुर होने की यात्रा ही है। अंतर केवल यह है कि लीजेंड बनने की यह यात्रा भिखारी ने किसी रुपहले पर्दे पर नहीं वरन असल ज़िंद्गी में की।

भोजपुरी के नाम पर सस्ता मनोरंजन परोसने की परंपरा भी उतनी ही पुरानी है, जितना भोजपुरी का इतिहास। 18 दिसंबर 1887 को छपरा के कुतुबपुर दियारा गाँव में एक तथाकथित निम्नवर्गीय परिवार में जन्म लेने वाले भिखारी ठाकुर ने विमुख होती भोजपुरी संस्कृति को नया जीवन दिया। उनके पिताजी का नाम दल सिंगार ठाकुर व माताजी का नाम शिवकली देवी था।

वे जीविकोपार्जन के लिये गाँव छोड़कर खड़गपुर चले गये। वहाँ उन्होंने काफी पैसा कमाया किन्तु वे अपने काम से संतुष्ट नहीं थे। रामलीला में उनका मन बस गया था। इसके बाद वे जगन्नाथपुरी चले गये।

अपने गाँव आकर उन्होंने एक नृत्य मण्डली बनायी और रामलीला खेलने लगे। इसके साथ ही वे गाना गाते एवं सामाजिक कार्यों से भी जुड़े। उन्होंने नाटक, गीत एवं पुस्तकें लिखना भी आरम्भ कर दिया। उनकी पुस्तकों की भाषा बहुत सरल थी, जिससे लोग बहुत आकृष्ट हुए। उनकी लिखित किताबें वाराणसी, हावड़ा एवं छपरा से प्रकाशित हुईं।

लोक चेतना के प्रतिनिधि कलाकार श्री भिखारी ठाकुर को यह समझने में कोई भूल नहीं हुई कि सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा और उसका विकास चिरपरिचित परंपरा के स्वीकार में ही निहित है। परंपरा से भिखारी ठाकुर का आत्यंतिक जुड़ाव ही उन्हें विविध शैलियों के प्रयोग के लिए उकसाता रहा। यह आकस्मिक नहीं था उनकी रचनाओं में सोरठी, कजरी, झूमर, पूर्बी तथा आल्हा छंद का अनुकरण मिलता है। नाटक के गीतों में वे पारंपरिक

सम्पर्क: 404, ओफिरा-2, अपोलो डी.वी. सिटी निपनियां, इंदौर-452010

तर्जों को ही तरजीह देते हैं परंतु अनुकरण तो अनुकरण ही है। कलाकार के जीवन में यही वह बिंदु है, जहाँ उसकी समस्त आंतरिक संभावनाएँ किसी अज्ञात बल से एकजुट होकर सर्वथा नवीन का निर्माण करती है। कहना न होगा कि बिदेसिया इसी सर्वथा नवीन की शोधप्रक्रिया की अन्यतम उपलब्धि है। अन्यथा न होगा, अगर कहें कि बिदेसिया भिखारी ठाकुर के समग्र नाट्यचिंतन की परमाभिव्यक्ति है।

भिखारी ठाकुर ने बिदेसिया, भाई-विरोध, बेटी-वियोग, विधवा-विलाप, कलयुग-प्रेम, राधेश्याम बहार, गंगा-स्नान, पुत्र-वध, गबरघिचोर, बिरहा-बहार, नकलभांड के नेटुआ, और ननद-भउजाई आदि नाटकों की रचना की। भजन-कीर्तन और गीत-कविता आदि की लगभग इतनी ही पुस्तकें प्रकाशित हुईं। लोक प्रचलित धुनों में रचे गये गीतों और मर्मस्पर्शी कथानक वाले नाटक बिदेसिया ने भोजपुरीभाषी जनजीवन की चिंताओं को अभिव्यक्ति दी। जीविका की तलाश में दूरस्थ नगरों की ओर गये लोगों की गाँव में छूट गयी स्त्रियों की विविध छवियों को उन्होंने रंगछवियों में रूपांतरित किया। अपनी लोकोपयोगिता के चलते बिदेसिया भिखारी ठाकुर के समूचे सृजन का पर्याय बन गया। बेटी-वियोग में स्त्री-पीड़ा का एक और रूप सामने था। पशु की तरह किसी भी खूँटे से बाँध दिये जाने का दुख और वस्तु की तरह बेच कर धन-संग्रह के लालच की निकृष्टता को उन्होंने अपने इस नाटक का कथ्य बनाया और ऐसी रंगभाषा रची, जिसकी अर्थदीप्ति से गह्वरों में छिपीं नृशंसताएँ उजागर हो उठीं। यह अतिशयोक्ति नहीं है और जनश्रुतियों में दर्ज है कि बेटी-वियोग के प्रदर्शन से भोजपुरीभाषी जीवन में भूचाल आ गया था। भिखारी ठाकुर को विरोध का सामना करना पड़ा। पर यह विरोध साँच की आँच के सामने टिक न सका। उनकी आवाज और अपेक्षाकृत टांसदार हो उठी। इतनी टांसदार कि आजादी के बाद भी स्त्री-पीड़ा का नाद बन हिंदी कविता तक पहुँची। बेटी-वियोग का नाम उन दिनों ही गुम हो गया और जनता ने इसे नया नाम दिया - बेटी-बेचवा। 'गबरघिचोर' नाटक में भिखारी ठाकुर विस्मित करते हैं। उनकी पृष्ठभूमि ऐसी नहीं थी कि उन्होंने 'खड़िया का घेरा' पढ़ा या देखा हो। कोख पर स्त्री के अधिकार के बुनियादी प्रश्न को वह जिस कौशल के साथ रचते हैं, वह लोकजीवन के गहरे यथार्थ में धँसे बिना सम्भव नहीं।

उन्होंने भोजपुरी संस्कृति को सामाजिक सरोकारों के साथ ऐसा पिरोया कि अभिव्यक्ति की एक धारा भिखारी शैली जानी जाने लगी। आज भी सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार का सशक्त मंच बन कर जहाँ-तहाँ भिखारी ठाकुर के नाटकों की गूँज सुनाई पड़ ही जाती है। बिदेसिया, गबरघिचोर, बेटी-वियोग एवं बेटी-बेचवा सहित उनके सभी नाटकों में बदलाव को दिशा देने वाले एक सामाजिक चिंतक की व्यथा साफ दिखती है। सबसे बड़ी बात कि उनके नाटकों में पात्र कभी केंद्र में नहीं रहे, हमेशा परिवेश केंद्र में रहा। यही कारण था कि उनके पात्रों की निजी पीड़ा सार्वभौमिक रूप इख्तियार कर लेती थी। हर नयी शुरुआत को टेढ़ी आँखों से देखने वाले भिखारी के दौर में भी थे। सामाजिक व्यवस्था के ऐसे ठेकेदारों से भिखारी अपने नाटकों के साथ लड़े। वे अक्सर नाटकों में सूत्रधार बनते और अपनी बात बड़े चुटीले अंदाज में कह जाते। अपनी महीन मार के माध्यम से वे अंतिम समय तक सामाजिक चेतना की अलख जगाते रहे। कोई उन्हें भरतमुनि की परंपरा का पहला नाटककार मानता हैं तो कोई भोजपुरी का भारतेंदु हरिश्चंद्र। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने तो उन्हें ''भोजपुरी का शेक्सपियर'' की उपाधि दे दी। इसके अलावा उन्हें कई और उपाधियाँ व सम्मान भी मिले। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से भी सम्मानित किया। इतना सम्मान मिलने पर भी भिखारी गर्व से फूले नहीं, उन्होंने बस अपना नाटककार जिंदा रखा। पूर्वांचल आज भी भिखारी के नाटकों से गुलजार है। यह बात अलग है कि सरकारी उपेक्षा का शिकार इनके गाँव तक अब भी नाव से ही जाना पड़ता है।

'मैं इस काम से अलग रहकर जीवित नहीं रह सकता - भिखारी ठाकुर'

एक जनवरी 1965 के दिन के एक बजे लोक कलाकार भिखारी ठाकुर की 77वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर धापा (कोलकाता के पूर्वी सीमांत) स्थित श्री सत्यनारायण भवन परिसर में भव्य अभिनंदन समारोह का आयोजन हुआ था। अभिनंदन के समापन समारोह के उपरांत संत जेवियर कालेज, रांची के हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. रामसुहाग सिंह ने भिखारी ठाकुर का साक्षात्कार किया। कैसे बुलंदियों के दिन में भी भिखारी अपने बारे में कुछ बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताना चाहते थे। भिखारी को शायद तब ही

इस बात का अहसास था कि आनेवाले दिनों में तमाशाई संस्कृति लोकरंग को निगल लेगी, तभी तो एक सवाल के जवाब में वे कहते हैं कि अगले जनम में वे यही करना चाहेंगे, अभी से नहीं कह सकते। भिखारी अपने निजी व सार्वजनिक जीवन में कोई रहस्य का पर्दा नहीं डालना चाहते थे, इसीलिये जब उनसे नाच का उद्‌देश्य पूछा गया तो उन्होंने धनार्जन को भी स्वीकारा।

भिखारी ठाकुर बीसवीं शताब्दीं के सांस्कृतिक महानायकों में एक थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी भिखारी ठाकुर का संपूर्ण जीवन संघर्ष में बीता। जिस समय भिखारी ठाकुर का जन्म हुआ उस समय पढ़ने व लड़ने को हक सबको नहीं था। इनकी पढ़ाई न के बराबर थी, लेकिन अपने समय के समाज में व्याप्त कुरीतियों को पैनी नजर से देखा। साथ ही उन पर अपने गीतों व नाटकों के माध्यम से करारा प्रहार किया। इनके नाटकों से आम से लेकर खास तक प्रभावित होता है।

भिखारी ने जीविकोपार्जन के लिए कई काम किए। कभी खड़गपुर गए तो कभी जगन्नाथपुर तो कभी कलकत्ता। काम में मन नहीं लगता था। लगातार उनके भीतर एक कलाकार का कीड़ा कुलबुलाता रहता। वे कमाने के लिए आसाम गये। आसाम जाने से पूर्व इनके पास राह खर्च नहीं था। उस समय गाँव के मालिक बाबू राम इकबाल नारायण से 20 रुपया कर्ज लिया। आसाम में इनके रिश्तेदार के अलावा गाँव के कई लोग रहते थे। वहाँ उन्होंने हजामत बनाने का काम भी किया। साथ ही अपने कर्ज को मनीआर्डर भेजकर अदा किया।

आसाम में एक पंडित थे। वे रात में कथा कहते थे। इनकी कथा को भिखारी ठाकुर समेत बहुत सारे लोग सुनते थे। भिखारी को कथा बहुत अच्छा लगता था। पंडित जी से उन्होंने चिट्‌टी लिखना व पढ़ना भी सीखा। साथ ही पंडित जी से अन्य चीजें भी कुछ लिख लेते थे। वे रामायण के भी कुछ-कुछ बातें जानने लगे। आसाम से वे घर आये और कुछ दिन रहने के बाद कलकत्ता (कोलकात्ता) गये। वहाँ पर वे पुश्तैनी कार्य करने के बाद पुनः गाँव आ गये।

भिखारी ठाकुर के गाँव के समीप के गाँव महाजी में एक रामलीला मंडली आयी थी। रात में जब रामलीला होती था तो गाँव के लोगों के साथ भिखारी ठाकुर भी जाते थे। भिखारी ठाकुर पर रामलीला का गहरा प्रभाव पड़ा। वे तुकबंदी करने लगे। रामलीला मंडली के जाने के बाद ग्रामीणों ने किसी तरह रामलीला की शुरुआत की। इसमें नाच भी होने लगा। भिखारी ठाकुर इसमें प्रमुख थे। वे शादी-ब्याह में भी नाच करने लगे। इसके बाद हजामत वाला काम छूट गया। रामलीला से होते हुए वे यथार्थ की ओर बढ़े। पुराण बाँचने के बाद जीवन को बाँचने लगे। जीवन के कठिन यथार्थ से टकराते हुए कई नाटक लिखे। भोजपुरी के इलाके में पलायन तो था ही। लोग रोजी-रोजगार के लिए कलकत्ता जाते थे। इस अंचल में एक कहावत बड़ा मशहूर था, 'लागा झुलनी का धक्का, बलम गए कलकत्ता'।' यह धक्का सिर्फ झुलनी का नहीं था। बेजार करती गरीबी, अकुलाते पेट और जिंदा रहने की जद्‌दोजहद भी इसमें शामिल थी। भिखारी जब कलकत्ता में थे, तो वहाँ रह रहे अपने गाँव-जवार के लोगों को करीब से पढ़ा-देखा। इसके बाद ये लोग उनकी कल्पना से होते हुए उनकी रचनाओं में दाखिल होने लगे। बातें सिर्फ कलकत्ते तक ही सीमित नहीं थी, जहाँ पैदा हुए थे, वहाँ भी समस्याएँ कम नहीं थीं। बेटी बेचने की आपराधिक प्रवृत्ति से लेकर कई ऐसी सामाजिक समस्याएँ मौजूद थीं, जो मनुष्य होने के एहसास को भी कमतर करती थीं। तुलसी की 'बड़े भाग मानुस तन पावा' की चौपाई गाँव की इन पगडंडियों में अपना दम तोड़ देती थी। भिखारी ने इन सब चीजों को करीब से देखा और इसे अपना विषय बनाया।

वे चाहते तो एक रामलीला मंडली चला सकते थे लेकिन उन्होंने अपना अलग रास्ता चुना। इस अलग राह के कारण ही उन्हें आज याद किया जाता है। रामलीला करने वालों को आज भला कौन याद करता है? बी.एन. तिवारी उर्फ भाई जी भोजपुरिया कहते हैं कि 'भिखारी ने जीवन की किताब को पढ़ा और उसे रचनात्मक आयाम दिया।' पर, हमारे समाज ने भी उन्हें उनका प्राप्य नहीं दिया। भोजपुरी गाने वालों ने भी उनके गीतों से परहेज किया। हाँ, कल्पना पटवारी ने जरूर भोजपुरी के इस शेक्सपीयर के नौ गीतों को उन्हीं की शैली में गाया है। इस असमिया गायिका ने भिखारी को सच्ची श्रद्धांजलि दी है। देश के पहले राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू की पहल पर उन्हें पद्‌मश्री तो मिला लेकिन साहित्य नाटक अकादमी ने उन्हें अब तक उचित सम्मान नहीं दिया है,

उनके नाम पर लोक कलाकारों के लिए पुरस्कार देने की घोषणा तक नहीं की है। क्या ऐसा कहा जा सकता है कि हमारा मानस अभी भी सामंतवादी मानसिकता से मुक्त नहीं हो सका है?

भिखारी ठाकुर ने अपने समय के समाज में जिन समस्याओं व कुरीतियों को देखा, उन पर नाटकों की रचना की। भिखारी ठाकुर पर यह आरोप लगता रहा कि वह स्वतंत्रता संग्राम के उथल-पुथल भरे समय में निरपेक्ष होकर नाचते-गाते रहे। यह सवाल उठता रहा कि क्या सचमुच भिखारी ठाकुर के नाच का आजादी से कोई रिश्ता था। उनके नाच का आजादी से बड़ा सघन रिश्ता था। अंग्रेजों से देश की मुक्ति के कोलाहल के बीच उनका नाच आधी आबादी के मुक्ति-संघर्ष की जमीन रच रहा था। भिखारी ठाकुर की आवाज अधरतिया की आवाज थी। अंधेरे में रोती-कलपती और छाती पर मुक्के मारकर विलाप करती स्त्रियों का आवाज। यह आवाज आज भी भटक रही है। राष्ट्रगान से टकरा रही है।

उन्होंने अपनी कविताई और खेल तमाशा से बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनता तथा बंगाल और असम के हिंदीभाषी प्रवासियों की सांस्कृतिक भूख को तृप्त किया। वह हमारी लोक जिजीविषा के निश्छल प्रतीक हैं। कलात्मकता जिस सूक्ष्मिता की माँग करती है, उसका निर्वाह करते हुए उन्होंने जो भी कहा दिखाया वह साँच की आँच में तपा हुआ था। उन्होंने अपने गँवई संस्कार, ईश्वर की प्रीति, कुल, पेट का नरक, पुत्र की कामना, यश की लालसा आदि किसी बात पर परदा नहीं डाला। उनके रचे हुए का बाह्यजगत आकर्षक और सुगम है ताकि हर कोई प्रवेश कर सके किंतु प्रवेश के बाद निकलना बहुत कठिन है। अंतर्जगत में धूल-धक्कड़ भरी आँधी है; और है – दहला देनेवाला आर्तनाद, टीसनेवाला करुण विलाप, छील देनेवाला व्यंग्य तथा गहन संकटकाल में मर्म को सहलानेवाला नेह-छोह। उनकी निश्छलता में शक्ति और सतर्कता दोनों विद्यमान हैं। वह अपने को दीन-हीन कहते रहे पर अपने शब्दों और नाट्य की भंगिमाओं से जख्मों को चीरते रहे। मानवीय प्रपंचों के बीच राह बनाते हुए आगे निकल जाना और उन प्रपंचों की बखिया उधेड़ना उनकी अदा थी। तनी हुई रस्सी पर एक कुशल नट की तरह चलने की तरह था यह काम। उनके माथे पर थी लोक की भाव-संपदा की गठरी और ढोल-नगाड़ों की आवाज की जगह कानों में गूँजती थी धरती से उठती हा-हा ध्वनियाँ। यह अद्‌भुत संतुलन था। इसी संतुलन से उन्होंने अपने लिए रचनात्मक अनुशासन अर्जित किया और सामंती समाज की तमाम धारणाओं को पराजित करते हुए संस्कृति की दुनिया के महानायक बने।

भिखारी ठाकुर ने अपने बिदेसिया नाटक में जीव, ईश्वर और माया का एक अनोखा रूपक तैयार किया है। भारतीय वाङ्मय में यूं तो ईश्वर की कल्पना अर्द्धनारीश्वर के रूप में जरूर की गई है लेकिन जीव और माया के संबंध में किसी भी संत, कवि ने ईश्वर की कल्पना नारी रूप में नहीं की है। वैसे भी बिदेसिया नाटक का मूल स्वर त्रासदी और करुणा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनकी प्रतिमूर्ति नारी ही हो सकती है। नाटक के जरिए ठाकुर जी ने परदेश में रहने वालों को घर लौटने की सलाह भी दी है।

इतनी समृद्ध और रचनात्मक शैली के बावजूद अब बिदेसिया नाटक अपना वजूद खोता जा रहा है। आननफानन में 15-20 हजार लोगों की भीड़ जुटा लेना जिस नाटक का अनिवार्य गुण रहा हो, जो नाटक दर्शकों को घंटों बैठकर देखने को मजबूर करने की हैसियत रखता हो, वह आज लोगों से दूर होता जा रहा है। बिदेसिया नाटक की लोकप्रियता कम होती जा रही है। इसकी लोकप्रियता में कमी आने का सबसे बड़ा कारण यह रहा कि भिखारी ठाकुर की मृत्यु के बाद उनकी मंडली के अन्य सदस्यों में न तो उतनी प्रतिभा थी और न उत्साह कि वे नाटक को समीचीन बनाए रखते। समय के साथ बिदेसिया में आवश्यक परिवर्तन नहीं किया जा सका। जब तक भिखारी ठाकुर जिंदा थे, अपने नाटकों में आवश्यक परिवर्तन कर उसे प्रासंगिक बनाए रखते थे, अपने नाटकों को सुधारने, सँवारने का काम करते रहे थे। उनके नहीं रहने के बाद सार्थक परिवर्तन की यह प्रक्रिया बंद हो गई, लिहाजा दूसरे जगहों की बात कौन करे, स्वयं भोजपुरी प्रदेशों में भी बिदेसिया का न तो पहले वाला ठाट बचा और न माँग। ले देकर शादीब्याह के अवसरों पर नाच तक सिमट कर रह गया है बिदेसिया।

♦♦♦

साक्षात् डॉ. रामदरश मिश्र

आरती स्मित

गाँव से आकर जो लोग महानगर की भूलभुलैया और चकाचौंध में अपनी सादगी, प्रेम और ग्रामीण परिवेश से मिले संस्कार भूल जाते हैं, महानगर में वे खो जाते हैं, मगर मैं गाँव से कभी अलग नहीं हुआ। वहाँ की सुंदरता, वहाँ का लोकाचार, संस्कृति, वहाँ के सुख-दुःख, समस्याएँ सब कुछ मेरे भीतर समाया है, इसलिए मेरे लेखन में गाँव दिखता है।

मिश्र जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लगभग 27 या उससे अधिक शोध हो चुके हैं--- अब भी हो रहे हैं। कई विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में उनकी रचनाएँ पाठ्यक्रम का हिस्सा हैं। ख्याति -लोलुपता से दूर, स्वयं से संतुष्ट रहने वाले आधुनिककालीन मनीषियों में मिश्र जी का नाम श्रद्धा और सम्मान से लिया जाता है। आज भी उनकी लेखनी चल रही है। आज भी उनके बाद की तीन पीढ़ियाँ उनसे जुड़कर उनका वात्सल्य और मार्गदर्शन पा रही हैं। मिश्र जी के वात्सल्य प्राप्त करने का सौभाग्य मेरा भी रहा। प्रवेश के साथ ही आत्मीयता की शीतल फुहार और चाय के साथ आत्मीय बातचीत का सार उसी रूप में आप से साझा करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही। ...

आरती : आपने कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, आलोचक, समीक्षक आदि के साथ ही गद्येतर विधा पर भी लेखनी चलाई--साहित्य को बहुत कुछ दिया। आप प्राध्यापक भी रहे। आपको अपना कौन सा पक्ष महत्वपूर्ण और प्रिय लगता है?

डॉ. मिश्र : प्राध्यापक होना, छात्रों को सही शिक्षा और सही दिशा में बढ़ने की प्रेरणा देना तो प्रत्येक प्राध्यापक का दायित्व भी है और इसलिए यह पक्ष अपने आप में महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त कविता विधा मुझे अधिक प्रिय है। मैंने लेखन का आरंभ भी कविता से ही किया।

आरती : आरंभिक रचना से जुड़ी कोई स्मृति?

डॉ. मिश्र : मुझपर छायावाद का प्रभाव अधिक रहा है। प्रकृतिपरक कविताएँ। पंत जी की, अन्य कवियों की भी खूब पढ़ता था। उस समय मैं स्कूल में ही था, दूसरी कक्षा में रहा होऊँगा, तब से टुकड़े में लिखने लगा। पहली बार कविता छपी और शाबाशी मिली, फिर तो उत्साह बढ़ गया और कविता लिखने की शुरुआत हो गई। बाद में वह कविता प्रकाशित भी हुई। आज भी मेरे पास है। आज भी कविता से

सम्पर्क: द्वारा श्री गोराचंद कोले, प्रथम तल, गली नं. 5, (काली मंदिर गली), गणेश नगर, पांडव नगर कॉम्पलेक्स, दिल्ली-110092

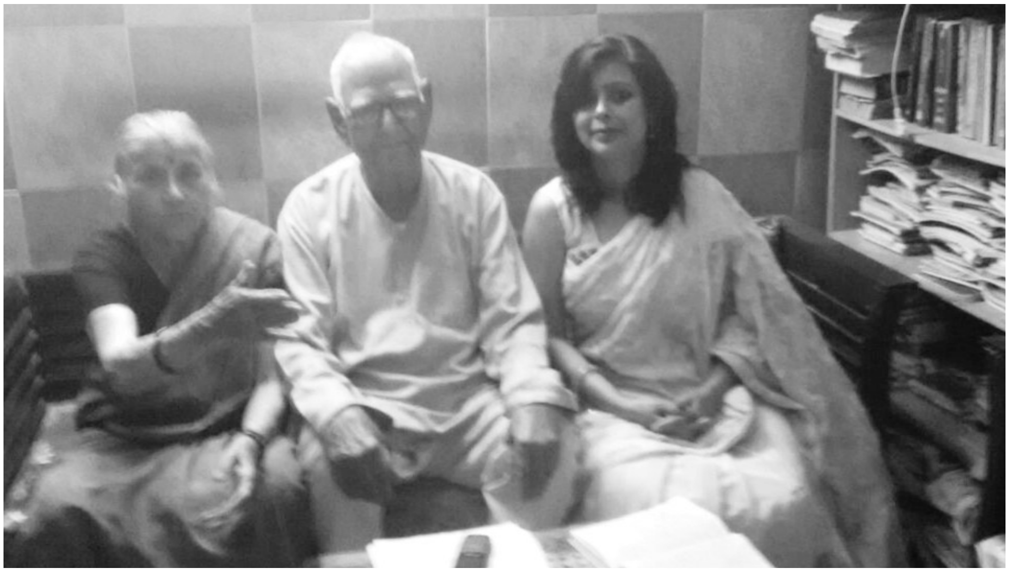

जुड़ा हूँ। कविता संवेदना से जोड़ती है, संवेदनशील बनाती है और दूसरों को समझने का गुर सिखाती है। पहली कहानी 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई। कहानी का नाम तो याद नहीं, मगर धर्मवीर भारती के समय में मुझसे कहानी माँगी गई, लिखी और पुरस्कृत भी हुई,फिर तो कहानी भी लिखना शुरू हो गया। मैं मूलत: कवि हूँ, फिर कहानीकार और उपन्यासकार। हाँ, कविता और कहानी के सृजन में मुझे समान आनंद मिलता है। मतलब कि मैं सृजनात्मक हूँ, शेष तो मित्रों और संपादकों के स्नेहिल दबाव पर लिखता गया। जैसे संस्मरण की माँग हुई तो संस्मरण लिखा, इसी तरह यात्रा वृतांत, समीक्षा एवं समालोचना भी लिखा गया। आत्मकथा भी लिखी। सब बीच- बीच में चलता रहा। मैं ये कहता हूँ कि गद्येतर विषय मैंने लिखे नहीं, लिखवाए गए। बच्चों के लिए भी लिखा। किंतु कविता और कहानी स्वयं आविर्भूत होती है, वहाँ मैं सचेत मन से कुछ नहीं करता।

आरती : आप वर्षों से महानगर में रह रहे हैं, मगर आज भी आपके भीतर गाँव बसता है। अपने गाँव के बारे में बताएँ।

डॉ. मिश्र : गाँव मेरे भीतर बसा है। गाँव का अर्थ रास्ते, खेत और पगडंडी -मात्र नहीं होता, पूरी प्रकृति और प्रकृति से जुड़ी संस्कृति होती है। गाँव में आप हर घर को भीतर से जानते हैं, गाँव में एक की बेटी सबकी बेटी, एक का मेहमान सबका मेहमान होता था, आज भी कमोबेश यह भावना जीवित है,जबकि शहरों में अपने पड़ोसी के बारे में भी मालूम नहीं होता। वैसे महानगर में छोटे-छोटे शहर बसे होते हैं। और हर शहर के भीतर कई गाँव बसे होते हैं। मैं शहर के भीतर बसे गाँव या कहो कि ग्रामीण परिवेश में रहता हूँ, जहाँ जमीन से जुड़े लोग हैं, श्रमजीवी वर्ग है। इनके बीच रहना मुझे अच्छा लगता है।

मेरा गाँव दो नदियों से घिरा बहुत ही सुंदर है, जहाँ हर ऋतु का सौंदर्य उभरकर आता है। पोखर, बाग-बगीचा, बसंत और फगुआ का आना, साथ -साथ सारे पर्व मनाना, सबकी खैर-खबर पूछना-जानना -- ये सब गाँव की विशिष्टता रही। प्रकृति के सान्निध्य और ग्रामीण सरलता ने मुझे हमेशा बाँधे रखा। तो मैं ये कह सकता हूँ कि मेरे भीतर एक गाँव है और गाँव के भीतर मैं हूँ। मेरी रचनाओं में मेरा गाँव हमेशा उभरकर आया।

आरती : आपकी एक कविता 'सड़क' जिसने मुझे अंत तक ले जाकर, बेचैन छोड़ दिया-- इसी भाव से जुड़ी कविता है। उस कविता से गुजरते हुए एक प्रश्न मेरे मन में उठा कि महानगर ने आपको क्या दिया? अच्छा या बुरा --- जो भी आपके अनुभव रहे हों।

डॉ. मिश्र : गाँव से आकर जो लोग महानगर की भूलभुलैया और चकाचौंध में अपनी सादगी, प्रेम और ग्रामीण परिवेश से मिले संस्कार भूल जाते हैं, महानगर में वे खो जाते हैं, मगर मैं गाँव से कभी अलग नहीं हुआ। वहाँ की सुंदरता, वहाँ का लोकाचार, संस्कृति, वहाँ के सुख-दुख, समस्याएँ सबकुछ मेरे भीतर समाया है, इसलिए मेरे लेखन में गाँव दिखता है।

महानगर की बात करूँ तो ऐसा नहीं है कि महानगर में सिर्फ कमियाँ या बुराइयाँ ही हैं। इस महानगर ने मुझे कॉलेज में सम्मानित पद दिया, दृष्टि की व्यापकता दी, समझ का दायरा बढ़ाया। जबतक गाँव में था, कहाँ पता था कि आज क्या लिखा जा रहा है? कैसा लिखा जा रहा है? मैंने बताया ना, कि मैं तो छायावादी शैली में कविताएँ लिखता था, काशी विद्यापीठ में नामांकन के बाद बहुत कुछ जाना, फिर लेखन -शैली बदली। बड़े- बड़े विद्वान साहित्यकारों से मिलने का सौभाग्य मिला, उनका मार्गदर्शन मिला। साधन- संसाधन मिले। अपने भावों और विचारों को पुस्तक रूप देने के लिए सहृदय प्रकाशक मिले.... बहुत कुछ मिला। मैं महानगर के प्रति या कहूँ कि जिस भी शहर में रहा, उसके परिवेश के प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

ये हम पर निर्भर करता है कि हम किसी परिवेश से क्या लेते हैं? मैंने पहले भी बताया कि गाँव मेरे अंदर हमेशा बसा रहा रहता है, इसलिए गाँव की सरलता और नैसर्गिकता आज तक बनी हुई है, और महानगर का आडंबर मुझे छू नहीं पाया। प्रत्येक स्थान की अपनी महत्ता है।

आरती : आपका आंचलिक उपन्यास 'जल टूटता हुआ -सा' बहुचर्चित कृतियों में से एक है। इसके कथानक की बनावट और बुनावट पर कुछ बतलाएँ।

डॉ. मिश्र : मैंने बताया ना, मेरा गाँव दो नदियों की गोद में खेलता गाँव है। उसकी संस्कृति नदी से जुड़ी है, जीवन -मूल्य भी। जल जीवन है, जल सम्मान का प्रतीक है और जल से घिरे होने के कारण उसकी अपनी समस्याएँ, अपनी आपदाएँ, विवशताएँ भी रही हैं। अपने गाँव से मेरा जुड़ाव इतना अधिक रहा कि मैंने गाँव से जुड़ी तमाम बातों-- मुद्दों को लेकर पहला उपन्यास लिखा --- 'कगार की आग'। बाद के वर्षों में, बदलते समय में गाँव में भी बदलाव आया। भौगोलिक स्थितियों- परिस्थितियों के साथ ही गाँव के जीवन- मूल्य, विचार, जीवन-दृष्टि में भी परिवर्तन और परिवर्द्धन हुए, इन्हें ध्यान में रखकर यह उपन्यास लिखा--- 'जल टूटता हुआ-सा'। वैसे मैं रेणु के 'मैला आँचल' को आंचलिक उपन्यास का स्तम्भ मानता हूँ। मैं उस उपन्यास से, उसके ताने- बाने से बहुत प्रभावित हुआ हूँ।

आरती : आपकी उनसे कभी मुलाकात हुई?

डॉ. मिश्र : हाँ, एक बार हुई। बनारस में। रेणु ने आंचलिकता को जो ऊँचाई दी, वह औरों के लिए प्रेरक है। मेरा समय बहुत अच्छा रहा। विद्वान साहित्यकारों का साथ, उनका मार्गदर्शन मिला। वे बड़े सहज भाव से मिलते थे। वरिष्ठ साहित्यकार थे, स्नेह से मिलते और समझाते थे। वाद था, किंतु सस्ती राजनीति नहीं थी।

आरती : राजनीति से एक बात जेहन में उभर रही है। पुरस्कारों की राजनीति के विषय में आपकी क्या सोच है? जगजाहिर है कि आपने अपने नाम या सम्मान- प्राप्ति के लिए कभी कोई प्रयास नहीं किया। पुरस्कारों के लिए कभी किसी का ध्यान अपनी ओर नहीं खींचा। देर से ही सही, साहित्य अकादमी ने इस ओर पहल की और बहुत पहले आपकी ही गजल का एक शेर उस दिन चरितार्थ हो गया --- 'आप जहाँ पहुँचे छलांगे लगाकर; वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे- धीरे।' और उसके बाद तो यह शेर हर ऐसे मौकों पर लोगों की जुबान पर बस गया है।

डॉ. मिश्र : हाँ, उस दिन भी लोगों ने ही उस शेर को पढ़ा था और उसके बाद मेरे पास कई फोन और संदेशे आए कि अकादमी का यह निर्णय स्वागत योग्य है; अकादमी ने यह अच्छा फैसला लिया। इसी तरह की कई प्रतिक्रियाएँ मुझ तक पहुँचीं। साहित्य में राजनीति की जहाँ तक बात है, मैं इसे झुठला तो नहीं सकता कि आज के दौर में ऐसा नहीं है, पहले भी रहा होगा। आज खुलकर नजर आता है। मगर सभी साहित्यकार राजनीति कर रहे, ऐसा भी नहीं है। आज भी कुछ लोग हैं जो ईमानदारी से, चुपचाप अपना काम कर रहे हैं। साहित्य के माध्यम से समाज को दिशा दे रहे हैं। सस्ती राजनीति करके या गुटबंदी करके दो- चार मंचों पर जगह बनाना या सम्मान पाना रचनाकार को दीर्घजीवी नहीं बनाता। दीर्घजीवी बनाता है उसका लेखन।

आरती : जी, प्रेमचंद तो कभी मंच पर जाना ही नहीं चाहते थे, मगर आज उन्हें कौन नहीं जानता।

डॉ. मिश्र : जो रचनाकार अपने समय को नहीं पहचानता, उसके संक्रमण को नहीं पकड़ता और अपने आसपास को खुली दृष्टि से नहीं देखता वह अपने समाज का सच लिख ही नहीं सकता, केवल गल्प चिरस्थायी नहीं हो सकता।

आरती : आपकी प्रतिबद्धता किस विचार, चिंतन या धारा के साथ है?

डॉ. मिश्र : वैसे तो मैं मार्क्स को मानता हूँ, किंतु मैं उसके वाद से बंधा नहीं। क्योंकि वाद के भीतर भी कुछ संकीर्णता है, मार्क्सवादियों या कहूँ, वाम पंथ के नाम पर कुछ बातें खोखले सिद्धांत भर हैं, उनके आचरण में नहीं। मैं किसी वाद के संकीर्ण घेरे में नहीं, उनसे मुक्त हूँ। मैं धर्म, जाति, धन के स्तर पर बुनियादी समता का पक्षधर हूँ। प्रत्येक व्यक्ति के पास जीवनयापन के बुनियादी संसाधन और सम्मान हो। श्रम को महत्व मिले। इस अर्थ में मैं मार्क्स को मानता हूँ।

आरती : आपकी रचनाओं में बहुत सहजता और ठहराव होता है, ठीक आपके व्यक्तित्व की भाँति। आपकी सहजता का मूल-मंत्र क्या है?

डॉ. मिश्र : मेरा गाँव-- मेरे भीतर बसा गाँव और शहर के भीतर के गाँव में बसा मैं। मुझे लगता है, यह मेरे व्यक्तित्व की अपनी विशेषता रही होगी, इस पर मैं बहुत कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि माता-पिता के संस्कार तो सभी को मिले, साधारण ग्रामीण परिवार के जो जीवन - संघर्ष होते हैं, उसे हम सबने भोगा। सरकारी स्कूल से पढ़ा, गाँव के अपने अभाव होते हैं, उन्हें जीया, गाँव की गरीबी और अभाव के साथ ही भाईचारे और स्नेह का जो बंधन होता है, हर घर में आत्मीयता की जो सुगंध होती है, उसने संभवत: मेरी संवेदना को अधिक मुखर किया। जिंदगी के यथार्थ को देखा, समझा, अंगीकार किया, उसे ही अभिव्यक्त भी किया, शायद इसलिए भी मेरे व्यक्तित्व और कृतित्व में वह सहजता विद्यमान है। और हाँ, मैंने अपनी रचनाओं में भाव- गांभीर्य को प्रश्रय दिया, शब्दाडंबर को नहीं। रचना ऐसी हो जो प्रत्येक वर्ग के पाठक के लिए पठनीय हो। एक

बार पढ़कर भी कुछ पा सके। फिर जो जितना गहरा उतरेगा, उतने गहरे भाव पा सकेगा।

आरती : जी, बतौर पाठक मैंने अनुभव किया है कि आपकी रचना अपने साथ यात्रा कराती हुई अंत में कुछ चिंतन करने को विकल कर देती है। हर बार कुछ नए अर्थों के साथ कविता खुलती है--- कहानी भी। जैसे कि 'सड़क' कविता और कहानी दोनों। 'दिन एक नदी बन गया' कविता संग्रह की लगभग सभी कविताओं ने यात्रा समाप्ति के बाद भी मुझे रोके रखा। निश्चित तौर पर कुछ अन्य पाठकों ने भी ऐसा महसूस किया होगा। इस संग्रह की रचना -यात्रा से संबद्ध कोई अनुभव या संस्मरण साझा करना चाहेंगे।

डॉ. मिश्र : मेरी रचना के पात्र या चरित्र काल्पनिक नहीं, यथार्थ धरातल से जुड़े लोग हैं। हाशिए पर रखे गए मुद्दे और लोग --- उनका जीवन-संघर्ष मुझे अपनी ओर खींचता रहा, मैंने उन्हें करीब से देखा -जाना और वही लिखा जो अनुभव किया। रचना तो वही सार्थक और सच्ची होती है, जो हृदय की संवेदना को विकल करके अंतस की गहराई से निकलती है। इसलिए यह अनायास प्रकट होती है। सायास की गई रचना दीर्घजीवी नहीं होती। मेरी रचनाएँ संवेदनशील पाठकों को इसलिए प्रिय हैं क्योंकि वहाँ संवेदना स्वत: नि: सृत है।

आरती : जीवन में आपने बहुत संघर्ष किए और देखे -- गुलाम देश से आजाद देश में हुए परिवर्तनों को आपने रचनाओं में उकेरा भी। उन दिनों से जुड़ी यादें, जो आप बताना चाहें--- क्योंकि आपके संस्मरण हमारे लिए धरोहर हैं।

डॉ. मिश्र : आजादी की लड़ाई में मैं खुलकर तो भागीदार नहीं रहा, लेकिन अपनी रचनाओं के माध्यम से रहा ही। और भी लेखक अपने स्तर से इस लड़ाई में अपनी आहुति दे रहे थे। उस समय युवा वर्ग ये नहीं सोचता था कि आजादी के बाद क्या होगा? लोगों के दिमाग में आजादी के बाद का स्वरूप स्पष्ट नहीं था, कोई ठहरकर इसपर बहुत विचारना भी नहीं चाहता था। बस, ये था कि हमें आजादी हासिल करनी है ... किसी भी कीमत पर। राष्ट्रीयता की लहर पूरे देश में फैली थी हालाँकि कुछ कवियों ने इस संभावना को अपनी रचनाओं में रेखांकित भी किया है --- यह संभावना आजादी को जीवन में प्रकाश भर देने के अर्थ में व्यक्त थी। एक मधुर कल्पना कि कोई भूखा नहीं रहेगा, सभी को भरपेट पौष्टिक आहार, वस्त्र, शिक्षा और अपना घर मिलेगा। मगर आजादी के बाद के स्वरूप ने सभी स्वाभिमानी स्वतंत्रता सेनानियों के मनोबल को तोड़कर रख दिया। स्वतंत्रता सेनानियों को सुविधाएँ दी गईं, उनमें कुछ ऐसे भी लोग शामिल हुए जो कभी आजादी के लिए लड़े ही नहीं। कुछ स्वाभिमानी सेनानियों ने इस लोभ को ठुकराया तो कुछ तक ये सुविधाएँ पहुँची ही नहीं। 1947 से 1960 तक का काल मोह भंग का काल रहा। इसका सीधा प्रभाव साहित्य पर पड़ा। साहित्य तो समाज का दर्पण है। पारंपरिक रचना-प्रक्रिया भंग हुई। बहुत कुछ दरका था, हर तरफ टूटन की अनुभूति थी। आजादी के पहले हर तरफ राष्ट्रीय स्वर का वर्चस्व था, एकाएक मूल्यहीन हो गया। 60 के दशक के बाद रचनाकारों ने नई सृजन-प्रक्रिया अपनाई। नए विषय, नए कलेवर में भाषा- शैली और शब्द प्रयोग.... सब बिलकुल नए रूप में। धीरे -धीरे पीढ़ी-दर- पीढ़ी वाद बदले, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कहानी, अकविता, अकहानी और भी कई परिवर्तन सामने आ रहे हैं। आज साहित्य किस दिशा में जा रहा है, कहना कठिन होता जा रहा है। ऐसा नहीं है कि आज अच्छे साहित्यकार नहीं हैं या उनका बहुत अभाव है, लेकिन रातो रात नामचीन होने की चाह में दिशाहीन भागना साहित्य -सर्जक का काम नहीं।

आरती : 'ही इज हेमंत्स फादर' आपकी बहुचर्चित कहानी है। माना जाता है कि आपने अनुभव को कथारूप दिया है। उससे जुड़ी कोई रोचक घटना बताएँ।

डॉ. मिश्र : वैसे तो उस कहानी में सब स्पष्ट ही है। दरअसल मेरी पोती --- हेमंत की बेटी की टीवी सीरियल के लिए शूटिंग मसूरी में होनेवाली थी। हेमंत कुछ दिन रह आया था। घर से किसी न किसी को साथ होना था तो रिटायरमेंट के बाद मैं ही फ्री था तो मैं ही गया। वहाँ जितने लोग मुझसे मिले -- मिलने आए, उनसे मेरा परिचय इस रूप में करवाया जाता --- ही इज हेमंत्स फादर। मुझे लगने लगा कि मेरी अपनी पहचान --- मेरा अपना अस्तित्व कहीं खो गया है। फिर इस कहानी ने जन्म लिया।

आरती : आपके यात्रा वृतांत से गुजरते हुए उस यात्रा का भरपूर आनंद पाठक उठाता है। एक-एक गली, चौराहा, यहाँ तक कि वहाँ रखे बेंच और चूल्हे तक को आप रेखांकित करना नहीं भूलते। शैली की सादगी आपकी विशिष्टता है। नई पीढ़ी के यात्रा वृतांतकार से कुछ कहना चाहेंगे।

डॉ. मिश्र : सभी लेखकों की अपनी -अपनी लेखन -शैली होती है। कोई यात्रा वृतांत में स्थल विशेष का जीवन-दर्शन लिखना पसंद करता है, कोई राजनीतिक मुद्दों को तो कोई साहित्यिक -सांस्कृतिक मूल्यों की तलाश करता है। मैं जिस भी जगह जाता हूँ, अपने साथ उस जगह को रखता हूँ, क्योंकि हर स्थान की अपनी विशिष्टता होती है। उसे क्लिष्ट शब्दों से या उसपर दार्शनिकता बखानकर मैं उस स्थान के महत्व को कम नहीं करना चाहता। इसलिए जहाँ जैसा देखता-सुनता हूँ, वैसा ही पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास करता हूँ। भाषा या शैली सोचकर नहीं लिखता, यह स्वत: होता जाता है।

आरती : आपकी विकास-यात्रा में आपकी जीवन-संगिनी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है--- क्या यह सच है?

डॉ. मिश्र : हाँ, बिलकुल सच है। अगर उसने मुझे घरेलू झंझटों और व्यवस्थाओं से मुक्त नहीं रखा होता तो निश्चित तौर पर मेरा लेखन प्रभावित होता। मैं कॉलेज और लेखन के प्रति समर्पित रहा, इसमें उनका सहयोग तो रहा ही। दूसरी बात यह भी है, जब हमारे लेखक मित्रों की पत्नियाँ घूँघट में चारदीवारी के भीतर बंद रहती थीं, मैंने इन्हें कभी किसी बंदिश में नहीं रखा। घर की व्यवस्था से लेकर बाजार तक का काम इन्होंने ही संभाला। मैं तो सैलरी लाकर इनके हाथ में दे देता था। ये वास्तविक अर्थों में गृहस्वामिनी और व्यवस्थापक रहीं। इस मकान को भी एक सीमा तक इन्होंने अकेले ही बनवाया है। तो ये दोनों ओर से रहा।

आरती : इस समय जबकि गुरु- शिष्य परंपरा लगभग समाप्त है। स्कूलों, कॉलेजों से निकलने के बाद छात्र शायद ही अपने गुरु - शिक्षक को याद रखते हैं, मगर आपके शिष्य -प्रशिष्य -- अब तो उनके भी शिष्य जो विश्वविद्यालयों में पढ़ा रहे हैं या अन्य व्यवसायों से जुड़े हैं, आपके जन्मदिन पर वे सब आपको बधाइयाँ अवश्य देते हैं और जो दिल्ली में हैं, वे पूरे उत्साह से आपका जन्मदिन मनाते हैं। यह आपके स्नेह का ही कमाल है। कैसे बाँध रखा है सबको?

डॉ. मिश्र : मैंने नहीं बाँध रखा है, उन्होंने मुझे बाँध रखा है। वे सब घर आते -जाते हैं। ''पत्नी की ओर इशारा करते हुए'' ये सबकी माँ हैं। अब माँ के पास आकर किसे अच्छा नहीं लगता। हम सभी से मिलते हैं, चाहे वह किसी भी उम्र का हो। हमारे पास देने को स्नेह है जो सभी के लिए है। अब तो तुम भी हमारी बेटी हो। जब चाहो, आ जाया करो।

डॉ. रामदरश मिश्र सपत्नीक दरवाजे तक विदा करते हैं, जैसे सचमुच बेटी बाहर जा रही हो। सिर पर हाथ रखकर ढेरों आशीष देते हैं। उनकी सादगी और सहजता पाकर मेरी आँखें नम हो चली है। बाहर कड़ी धूप खिली है। डॉ. रामदरश मिश्र से मिलना कड़ी धूप में तपे पथिक को किसी वृक्ष की छाँह मिलने जैसा है। इतनी सरलता, सहजता और आत्मीयता। निस्संदेह वे बड़े साहित्यकार ही नहीं, मनुष्यता का पर्याय भी हैं। एक सार्थक और सफल मुलाकात ने समालाप की शृंखला के लिए राह खोल दी है। मेरी यात्रा जारी है--- कड़ी धूप में छतनार की छांव की अनुभूति से भरी मैं घर लौट रही हूँ....।

♦♦♦

लेखकों की दुनिया अजब गजब

सूरज प्रकाश

विजय दान देथा बिज्जी हरे रंग के कागज पर हरी स्याही से लिखते थे। लेखन-सामग्री के साथ उनका लगाव बच्चों जैसा हुआ करता था। जैसे पहले से एक ज्योमिट्री-बॉक्स होते हुए भी बच्चा हमेशा एक नया लेने को लालायित रहता है, वैसे ही वे हर बार नया पेन, मनपसंद हरे कागज, उम्दा किस्म की स्याही की दवातें आदि खरीदने को तैयार रहते। वे हमेशा मोटी निब वाले फाउंटेन-पेन से अक्षर जमा-जमाकर लिखने में ही आनंद अनुभव करते थे।

सम्पर्क: एच1/101 रिद्धि गार्डन फिल्म सिटी रोड, मालाड पूर्व, मुंबई 400097, मो. 9930991424, e-mail: mail@surajprakash.com

किसी भी लेखक की अपनी खुद की दुनिया बहुत पेचीदगी भरी होती है और कई बार उसे उसके लिखे हुए के जरिये नहीं पहचाना जा सकता। लेखक के भीतरी और बाहरी संघर्ष, उसकी कुछ खास आदतें, लिखने के लिए खुद को तैयार करने के कुछ नायाब तरीके, उसकी तकलीफें और कई बार उसकी जीवन-शैली के हैरान कर देने वाले पक्ष हमें लेखक के नजदीक ले जाते हैं और हमें यकीन होने लगता है कि लेखन करना भोग विलास करने जैसा तो नहीं ही होता। लेखन एक ऐसी साधना है जिसकी अभिव्यक्ति के किसी अन्य माध्यम से तुलना नहीं की जा सकती।

दुनिया भर के लेखकों के बारे में पढ़ने पर पता चलता है कि शायद ही कोई ऐसा लेखक हो जिसे तरह-तरह की तकलीफों से न गुजरना पड़ा हो। किसी लेखक का बचपन-ही-बचपन विहीन रहा तो किसी लेखक को भयंकर आर्थिक और दूसरी तरह की तकलीफों से दो-चार होना पड़ा। कई ऐसे भी लेखक रहे जो जीवन के आए दिन के संघर्षों का डटकर मुकाबला नहीं कर पाए और मदिरा की शरण में चले गए। कुछ लेखक बेहतरीन रच कर खुदकुशी कर बैठे। कई लेखक ऐसे भी रहे जिन्होंने अद्‌भुत रचा लेकिन उन्हें उनके काम की तुलना में मान्यता या तो मिली ही नहीं या कम मिली या देर से मिली या मिली तो मरने के बाद मिली। चाहे कुछ भी रहा हो, हर लेखक ने अपना बेहतरीन लेखन आने वाली पीढ़ियों को दिया। दुनिया का हर लेखक अपने शब्दों के जरिये हमारे बीच आज भी जिन्दा है।

यहाँ दुनिया भर के कुछ लेखकों की कुछ रोचक आदतों, सनकों और जीवन शैलियों के बारे में बताया जा रहा है:

लेट कर, खड़े होकर या बाथ टब में लिखने वाले और अजीब आदतों वाले लेखक

- अर्नेस्ट हेमिंग्वे, चार्ल्स डिकेंस, वर्जीनिया वुल्फ, लेविस केरोल और फिलिप रोथ और आचार्य नगेन्द्र जैसे लेखक

खड़े होकर लिखते या टाइप करते थे। बीच-बीच में हरिवंश राय बच्चन भी खड़े होकर लिखते रहे।

- आगाथा क्रिस्टी अपने उपन्यासों के लिए कत्ल के प्लॉट सोचने के लिए बाथ टब में बैठकर सेब कुतरा करती थीं।
- गर्टूड स्टेन पार्क की गई कार में लिखते थे।
- व्लादीमीर नबोकोव भी कार में बैठकर लिखते थे। कार के भीतर का सन्नाटा लिखने के लिए एकदम उम्दा माहौल देता था। वे कई बार बाथ टब में लेटे हुए लिखने का आनंद उठाते थे। उन्होंने अपने अधिकतर नॉवेल कार्डों पर लिख कर ही तैयार किए जिन्हें वह पेपर क्लिप लगाकर छोटे-छोटे बक्सों में तरतीब से लगा कर रखते थे।
- जॉर्ज आर्वेल, मार्क ट्वेन, एडिथ वार्टन, विंस्टन चर्चिल और मार्सेल प्रोउस्ट आदि लेखक अपना अधिकतर लेखन बिस्तर में लेट कर ही करते थे।
- फ्रांसीसी नाटककार एडमंड रोस्तां भी अपने बाथ टब में बैठकर लिखा करते थे।
- रेमंड कार्वर जिन्हें अपनी कहानियों के लिए अमेरिकी चेखव का खिताब हासिल था, अपनी कार में बैठकर लिखा करते थे।
- जोसेफ हेल्लर को बस की सवारी में ही लिखने के विचार आते थे।
- ट्रयुमैन कपोते पीठ के बल लेटकर लिखते थे। एक हाथ में शेरी और दूसरे हाथ में पेंसिल। लगातार सिगरेट के कश लगाते और काफी पीते। जब शाम ढलने लगती तो कॉफी की जगह मिंट जाय आ जाती। फिर शेरी और अंत में मार्टिनी। वे अपना बेहतरीन लेखन हाइवे पर बने मोटल में ही कर पाते थे। एक बार एक स्क्रिप्ट लिखनी थी तो एक ट्रेन टिकट खरीद कर वे पूरी यात्रा में लिखते रहे। न्यू यार्क और शिकागो के बीच वे 140 पन्ने घसीट चुके थे।
- पंजाबी कहानी के जनक नानक सिंह गरीबी के बावजूद पहाड़ पर जाकर लिखते थे।
- हिंदी कहानीकार मोहन राकेश भी पहाड़ पर जाकर लिखते थे। वे अपना लेखन टाइपराइटर पर करने वाले हिंदी के शुरुआती लेखकों में से थे।
- मौका निकाल कर राजेन्द्र यादव और उपेन्द्र नाथ अश्क भी लिखने के लिए पहाड़ों पर जाते रहे।
- नाजिम हिकमत ने अपनी कविताएँ जेल में रहते हुए सिगरेट की डिब्बियों पर लिखी थीं।
- बेन फ्रेंकलिन पहले अमरीकी थे जिन्होंने बाथ टब खरीदा था। वे उसी में लेटकर लिखते थे।
- मार्क ट्वेन और राबर्ट लुई स्टीवेन्सन भी लेट कर लिखते थे।
- सर वाल्टर स्कॉट घोड़े की पीठ पर सवार होकर कविता रचते थे।
- फिलिप रोथ अमेरिकी लेखक खड़े हुए, चहलकदमी करते हुए सोचते हुए लिखते हैं। हर पन्ना लिखने के बाद आधा मील चलते हैं।
- जैक केरॉक ने ऑन द रोड का पहला ड्राफ्ट 120 फुट लंबे टेलिटाइप रोल पर तीन हफ्ते में लिखा था।
- फांज काफ्का न्यूडिस्ट कैंपों में जाया करते थे लेकिन अपने कपड़े उतारने से मनाकर दिया करते थे।
- नोएल कावर्ड का ये दावा था कि वे हर सुबह टाइम्स में मृत्यु के शोक संदेशों वाला कॉलम पढ़कर अपना दिन शुरू करते थे। अगर उसमें उनके नाम सा नाम नहीं होता था तो वे काम करना शुरू कर पाते थे।
- मौलियर की मृत्यु अपने ही एक नाटक में अभिनय करते हुए मंच पर ही हुई थी। संयोग से वे भ्रम रोगी (हाइपोकांड्रियाक) की भूमिका कर रहे थे।
- मिकी स्पीलेन ने अपने उपन्यास 'किस मी, डैडली' की 50,000 प्रतियाँ इसलिए वापिस मंगवा ली थी क्योंकि शीर्षक में कौमा (,) लगना रह गया था। ये प्रतियाँ नष्ट कर दी गई थीं।
- वेस्टर्नस लुई लामौर के लेखक की रचनाएँ प्रकाशित होने से पहले 200 बार उनकी रचनाएँ लौट चुकी थीं। अब उनके उपन्यासों की दुनिया भर में 32 करोड़ प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

- 1862 में उपन्यासकार सर एडवर्ड बुलवेर लिटन ने सबसे पहले कहा था कि कलम में तलवार से ज्यादा ताकत होती है। इस वाक्यांश के लिए उन्हें ग्रीस का राज मुकुट देने की पेशकश की गई थी।

- आधुनिकतावादी कथाकार केथरीन मैंसफील्ड ने अपनी पहली शादी में शोक का जोड़ा पहना था और शादी की रात को ही पति को छोड़कर चली गई थी।

- ट्रूमैन कपोते अपना कोई भी काम शुक्रवार को शुरू नहीं कर पाते थे। यहाँ कि कि अगर उनके होटल के कमरे का नंबर 13 हो तो वे कमरा बदल लेते थे। वे ऐशट्रे में सिगरेट के तीन टोटों से ज्यादा कभी नहीं छोड़ते थे। अगर टोटे ज्यादा हो जाएँ तो अपने कोट की जेब में ठूँस लेते।

- हैंस क्रिश्चियन एंडरसन जब होटलों में ठहरते तो अपने साथ लंबी रस्सी लेकर जाते थे ताकि अगर कभी आग लग जाये तो उन्हें निकल भागने में आसानी हो।

- डी.एच. लारेंस के अन्तिम संस्कार में केवल दस लोग मौजूद थे। उनमें से एक अल्डस हक्सले थे।

- मार्लोन ब्रेंडो टोनी मौरिसिन के घनघोर प्रशंसक थे। वे अक्सर उन्हें फोन करते थे और उन्हीं की रचनाओं में से अपने पसंदीदा अंश सुनाया करते थे।

- डी.एच. लारेंस नंगे बदन शहतूत के पेड़ों पर चढ़ जाया करते थे। इससे उनकी कल्पना शक्ति को पंख लग जाते थे।

- अलेक्जेंडर ड्यूमा हर विधा के लिए अलग रंग के कागज इस्तेमाल करते थे। कागज का रंग बदलने से उन्हें लगता था कि उपन्यास के स्तर में फर्क आ गया है। वे अपना सारा लेखन घर की भागदौड़ के काम काज निपटाने और भोजन करने के लिए बीच करते थे।

- सुप्रसिद्ध जेम्स बॉड सीरीज के लेखक इयान फ्लेमिंग सोने के टाइपराइटर पर अपने उपन्यास टाइप करते थे।

- एडगर एलन पो अपने फाइनल ड्राफ्ट अलग-अलग कागजों पर तैयार करते और बाद में उन्हें एक लंबे रोल के रूप में चिपका देते। उनके पास कैटरीना नाम की एक प्यारी-सी बिल्ली थी। वे उसे अपनी साहित्यिक गुरु मानते थे। जब बिल्ली अंगड़ाई लेती तो जनाब पो मान लेते कि मेरे शब्द बिल्ली मैडम ने एप्रूव कर दिए हैं।

- कुर्ट वोनेगट लिखने से पहले दंड बैठक लगाते थे।

- गैब्रियल गार्सिया मार्कवेज के लिखने की आदतें बेहद दिलचस्प थीं। उन्होंने हमेशा टाइपराइटर पर लिखा। वे सिर्फ दो उंगलियों से टाइप करते थे। दोनों हाथों की तर्जनी से। अगर उनकी मेज पर पीला गुलाब न हो, तो वे लिख नहीं पाते थे। वह अपने लिखे हुए को शब्दों में नहीं मापते थे, बल्कि मीटर में मापते थे, क्योंकि शुरुआती दिनों में वह कागज की लंबी रिम पर लिखा करते थे।

- ज्यां पॉल सार्त्र की लिखने की बड़ी विचित्र शैली थी। औरों की तरह वे भी हाथ से लिखते थे लेकिन जब लिखते-लिखते हाथ थक जाते तो पैरों से लिखना शुरू कर देते।

- धर्मवीर भारती जब खाने के प्रति लापरवाह होने लगे और चाय ज्यादा माँगने लगे तो पुष्पा जी समझ जाती थीं कि कोई रचना बाहर आने को है।

- राही मासूम रजा अपने घर पर ही, बच्चों के शोर शराबे के बीच ही लिख पाते थे। संगीत बज रहा हो, बच्चे खेल रहे हों, दस जन आपस में बात भी कर रहे हों और खूब धूम धड़का हो घर में तो ये उनके लिखने के लिए सही माहौल होता था।

- वैलस स्टीवेंस चलते-चलते कागज की पर्चियों पर कविता लिखा करते थे। इस तरह से वे प्रेरणा पाते थे। बाद में ये पर्चियाँ सेक्रेटरी को टाइप करने के लिए दे दी जातीं।

- कैफी आजमी जब ठीक ठाक कमाने लगे तो महंगे माउंट ब्लांक पैन से लिखते थे। उनके पास इस कंपनी के 15 पैन थे।

- चार्ल्स डिकेंस को नीली स्याही से मोह था। इसके पीछे कोई वहम नहीं था। उनका ये मानना था कि नीली स्याही जल्दी सूखती है और वे अपना लेखन और अपना पत्राचार स्याही सोख्ते का इस्तेमाल किये बिना आराम से कर सकते हैं।

- रूसी साहित्यकार चेखव को घड़ी सामने रखकर लिखने की आदत थी। हर वाक्य की समाप्ति पर उनकी निगाह घड़ी पर होती थी।

♦♦♦

पंजाब आतंकवाद के वे दिन

कमलेश भारतीय

"यह फसल, यह पीढ़ी हमने तो तैयार नहीं की। फिर किसने पंजाब के पानी में जहर घोल दिया? कहाँ से कहाँ पहुँच गये हम? हमारे दादा ने तो भरे गाँव के बीच कीमती जमीन बीस मरले गुरुद्वारे के लिए दान दी थी, क्योंकि हमारी दादी सिख परिवार से थी और वर्ष में एक बार घर में अखंड पाठ जरूर रखा जाता था। सिख स्कूलों में पढ़ाते समय हमारे अध्यापक सुबह सबद भी गाते। फिर यह माहौल किसने बनाया?"

पंजाब यानी पाँच दरियाओं के बीच की धरती, लेकिन मुझे जो पंजाब मिला वह सिमट कर रह गया था। पंजाब आधा पाकिस्तान में और आधा हिंदुस्तान में। मतलब मुझे आधा पंजाब ही मिला। मेरे हिस्से में आया।

थोड़ी आँख खुलने पर पंजाब सूबे की लड़ाई के दृश्य भी सड़कों पर देखे। ऐसे नारे भी सुने जिनके बाद बाल मन में सवाल उठे कि आखिर पंजाब के और कितने टुकड़े होंगे? पर हुए। पंजाब जो विशाल था, वह सिमट कर रह गया। दादी पाकिस्तान के पंजाब की कहानियाँ सुनाती थी और हम उस मकान में रह रहे थे जो कभी किसी मुस्लिम का था। बड़ा हकीम। जब दादी नहीं रही तब पाकिस्तान से एक महिला आई। बताया गया कि वे उस हकीम की बहू हैं। पुराना घर देखने आई हैं।

इस बात को मैंने उस समय एक लघुकथा में लिखी : यह घर किसका है? यानी यह घर कभी मुसलमान का, कभी हमारा, यानी तो क्या इसमें इन्सान कभी नहीं बसेंगे? क्योंकि ऐसे हालात बन रहे थे कि हमें भी शायद यह घर छोड़ देना पड़े। उस महिला के मुँह से ही संवाद कहलवाया था – ''या अल्लाह, इस घर में इंसान कब बसेंगे?''

ये आतंकवाद के दिन थे। वह पंजाब जहाँ फसलें लहलहाती थीं, वहीं एक पत्रकार होने के नाते खून की नदियाँ देखने को मिलती थीं। दिनदहाड़े खुले बाजार में कब, कहाँ से गोली चलने की आवाज और खबर आ जाए, कुछ पता नहीं था। सब खैर मनाते थे जब सुबह को काम पर गया आदमी शाम को घर लौट आता था। शाम के समय शहरों में अघोषित कर्फ्यू सा माहौल बन जाता था।

मेरे साथ नवाँशहर से ही पंजाबी ट्रिब्यून में आंशिक पत्रकार बहुत गहरे मित्र थे और सिख होने के बावजूद हर संकट में मेरे साथ खड़े मिलते थे लेकिन ऐसी हवा चली कि वे आतंकवाद

सम्पर्क: 1034 बी, अर्बन एस्टेट 2, हिसार–125005 (हरियाणा)
मोबाइल : 9416047075

का साथ देने लगे और आखिर देश छोड़ कर ही भाग गये। इस पर भी कहानी लिखी — 'अंधेरी सुरंग में'। आखिर हम किस पर विश्वास करें? किस पर नहीं। पत्रकारिता के चलते खटकड़ कलाँ से नवाँशहर आते एक सिख युवा ने हाथ दिया रुकने के लिए। मैंने स्वभाव से रोक लिया क्योंकि वहाँ रोडवेज की बसें कम ही सवारी उठाती थीं। वह युवा कुछ आगे चलने पर पीछे बैठे ही बोला - आप प्रिंसिपल हैं? आदर्श स्कूल में?

- हाँ। इसमें क्या बड़ी बात है? पाँच छह गाँवों के बच्चे आते हैं। सब जानते हैं इस बात को।
- आप पत्रकार भी तो हैं।
- हाँ, हूँ पत्रकार। तो क्या? यह भी सभी गाँव वालों को पता हैं।
- आप स्कूल की ड्रेस बदल दीजिए। मतलब वो ड्रेस जो हम चाहते हैं।
- तुम कौन?
- मैं संगठन का एरिया कमांडर।
- अगर इतनी हिम्मत है तो मोहाली जाओ। हमारे हैड ऑफिस और सभी छह स्कूलों की ड्रेस बदलवा लो। हमने ड्रेस को नहीं बच्चों को पढ़ाना है।

इस तरह मेरी मुलाकात ऐसे स्वयंभू कमांडर से भी हुई।

दूसरी बार मैं अपनी पत्नी के साथ शाम के झुटपुटे में गाँव सोना से लौट रहा था कि मुँह ढाँपे तीन युवकों ने हाथ दिया। मैंने स्कूटी रोकी। वे निकट आए तो पैर छूने लगे। ''अरे, गुरु जी आप? आप जाओ। पर इतनी शाम को न चला करो।''

असल में मैंने सात वर्ष सिख संस्थाओं द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ाया था। वही विद्यार्थी बड़े होकर क्या से क्या बन गये?

मैंने स्कूटी स्टार्ट करते कह ही दिया - 'अरे गुरु के शिष्यों, मैंने यही सिखाया था? यही पढ़ाया था क्या?' वे जवाब में बोले - ''आप नहीं समझेंगे, गुरु जी। आप जाइए।''

यह फसल, यह पीढ़ी हमने तो तैयार नहीं की। फिर किसने पंजाब के पानी में जहर घोल दिया? कहाँ से कहाँ पहुँच गये हम? हमारे दादा ने तो भरे गाँव के बीच कीमती जमीन बीस मरले गुरुद्वारे के लिए दान दी थी क्योंकि हमारी दादी सिख परिवार से थी और वर्ष में एक बार घर में अखंड पाठ जरूर रखा जाता था। सिख स्कूलों में पढ़ाते समय हमारे अध्यापक सुबह सबद भी गाते। फिर यह माहौल किसने बनाया? सद्भावना समिति की बैठक में मैंने यह कविता सुनाई थी :

बसंत, तुम आए हो

तुम्हारा स्वागत् है।

जरा मेरी गलियों की रौनक तो लौटा दो

जरा मेरे शहरों से कर्फ्यू तो हटा दो

जरा मेरे नन्हे बच्चे के चेहरे पर

मुस्कान तो खिला दो।

फिर मैं भी तो जानूँ कि बसंत आया है।

कविता लम्बी है और यह जालंधर दूरदर्शन पर भी रिपोर्ट में आई।

***

अब पंजाब फिर एक गलत राह पर है। जिसे 'चिट्टा' कहते हैं। यानी नशे की चपेट में। रब्ब खैर करे। किसी की नजर न लगे मेरे पंजाब को। वही खेतों में हरियाली हो और मेरे पिता रात को गाँव जाते समय जो गुनगुनाते थे पंजाबी गीत वह याद आ रहा है-

'बत्ती बाल के बनेरे उते रखनीं आं
किते भुल्ल न जाए चन्न मेरा

मेरा पंजाब बस ऐसे प्रेम के नशे में मस्त रहे ना कि 'चिट्टे' के नशे में।

♦♦♦

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में जन्मी एक प्रेम कहानी

सुधांशु गुप्त

एक दिन उसने कविता से कहा, 'ऐसा नहीं हो सकता कि हम दोनों अलग रहें।' उसने बात को सुना। इस बात का अर्थ समझने में उसे कुछ पल लगे और उसके बाद उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू दिखाई देने लगे। उसे समझ नहीं आया कि शादी के बाद कोई किसी को छोड़ कैसे सकता है? उसने सिर्फ इतना कहा, ''मैं कहाँ जाऊँगी''

सम्पर्क: 64 डीडीए फ्लैट, (एलआईजी), साहित्य एनक्लेव, झिलमिल कॉलोनी, दिल्ली—110095, मो. : 9810936423
E-mail:gupt9sudhanshu@gmail.com

यह बीसवीं सदी के अंतिम दशक का एक दिन था। वह जीवन में पहली बार लड़की देखने जा रहा था। वह यानी रोहित वर्मा। यूं तो रोहित अरेंज्ड मैरिज के बहुत खिलाफ था लेकिन जीवन में कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ आती हैं, जिन पर इन्सान का बस नहीं चलता। अनेक लड़कियों से प्रेम संबंध बनाने और उनके टूटने के बाद रोहित पहली बार अकेला-सा महसूस कर रहा था। सो उसने फैसला किया कि अब उसे शादी कर लेनी चाहिए और घरवालों के आग्रह पर वह लड़की देखने के लिए चल दिया। लड़की के परिवार वाले एक एलआईजी फ्लैट में रहते थे। उसके साथ जाने वालों में उसकी बड़ी बहन, जीजा और एक छोटा भाई था। लड़की का घर भी उनके घर से बहुत ज्यादा दूर नहीं था। न तो ऑटो का ही रास्ता था और ना पैदल का सो हाथ रिक्शा पर जाना पड़ा। शादी के लिए रोहित जब कुछ सोचता तो उसके जेहन में दो ही बातें सबसे पहले आती थीं। पहली यह कि वह किसी मगरूर लड़की से शादी नहीं करेगा और दूसरी यह कि लड़की का घर, उस शहर में नहीं होना चाहिए जिस शहर में वह रहता है। उसकी ये दोनों ही अप्रकट इच्छाएँ यहाँ पूरी नहीं हो रही थीं। फिर भी वह लड़की देखने आ गया था। लड़कीवालों का घर छोटा लेकिन साफ-सुथरा था। पर पता नहीं क्यों रोहित को गेट में प्रवेश करने के साथ ही कुछ भी अच्छा नहीं लगा था। उसने मुँह बनाकर यह बात बहन के सामने प्रकट भी कर दी थी। लेकिन अब क्योंकि लड़की देखने आ चुके थे, इसलिए यह संभव नहीं था कि बिना लड़की देखे वापस जाएँ। रोहित ने घर में प्रवेश करने के साथ ही एक और बात यह भी नोट की कि लड़की वालों के स्वागत-सत्कार में एक ठंडापन है। कुछ देर इसी तरह औपचारिक बातचीत के बाद कमरे में लड़की ने प्रवेश किया। पता नहीं कैसे रोहित की नजरें सबसे पहले लड़की के हाथों पर पड़ी। उसने देखा कि लड़की के हाथ बहुत खूबसूरत हैं खासतौर से उसकी उँगलियाँ। फिर उसकी नजरें उँगलियों से ऊपर गई और उसने लड़की को ध्यान से देखा। गोल चेहरा... बड़ी-बड़ी आँखें...अच्छी कद-काठी...रोहित ने उसकी तस्वीर को पल भर के लिए अपने जेहन में बसाया और यह तय करने

की कोशिश की कि लड़की सुंदर है या नहीं। वह कुछ तय नहीं कर पाया। न जाने क्यों उसकी उँगलियाँ ही रोहित के जेहन में बस गईं और रोहित ने पाया कि उसकी उँगलियाँ बेहद खूबसूरत हैं।

दोनों की शादी तय हो गई। 'रोहित वैड्स कविता।' यह भी बीसवीं सदी के अन्तिम दशक का ही एक दिन था।

रोहित एक अखबार के दफ्तर में छोटी-सी नौकरी कर रहा था, लेकिन उसके सपने बहुत बड़े थे। वह चाहता था कि कविता के साथ मिलकर अपने सपनों को पूरा करे लेकिन शादी के तुरंत बाद दो अहम बातें हुईं। पहली, देश में आरक्षण लागू कर दिया गया, जिसके विरोध में जगह-जगह धरने प्रदर्शन और आत्मदाह होने लगे। 14-14 साल के लड़कों ने आत्मदाह करके आरक्षण का विरोध किया। आरक्षण की इस आग की लपटें पूरे देश में दिखाई दीं। आग की इन्हीं लपटों के बीच उसने अपनी सुहागरात मनाई-अपने घर पर ही और रोहित ने महसूस किया कि जब उसका शरीर प्रेम की आग में तपने लगता है तभी न जाने कैसे प्रेम की यह आग आरक्षण की आग में बदल जाती है। दूसरी बात जो उसे शादी के दो-तीन दिन बाद समझ में आई वह यह थी कि कविता एक नितांत धार्मिक प्रवृत्ति की, साफ-सफाई को पति और प्रेम से ज्यादा तरजीह देने वाली ऐसी लड़की है, जिसके लिए पति से संबंध बनाना एक घृणित कार्य है। इस तरह दोनों के बीच दूरियाँ बननी शुरू हो गईं। बस उसकी एक ही बात अच्छी थी कि वह घर को बहुत सलीके से रखती थी और रोहित का पूरा परिवार कविता के आने से बेहद खुश था। रोहित इसलिए खुश था कि परिवार खुश है।

और बीसवीं सदी के इस अंतिम दशक में खुशी के और भी कई कारण अचानक पैदा हो रहे थे। टीवी रंगीन हो चला था। मनुष्य ने युद्धों के भी लाइव प्रसारण देखने की ताकत अर्जित कर ली थी। वैश्वीकरण ने मुल्कों की सरहदों को खत्म करना शुरू कर दिया था। देश के प्रधानमंत्री ने आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत कर दी थी।

इधर घर में कविता के आने के बाद से घर की आर्थिक स्थिति बेहतर होने लगी थी और पहली बार घर में सोफा सेट आया था। अब परिवार के लोग रात का खाना सोफे पर बैठकर खाते थे। कविता आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण के बारे में कुछ नहीं जानती थी। जिस दिन रोहित का इंक्रीमेंट हुआ उस दिन पहली बार कविता ने रोहित से कहा, ''क्यों ना घर में एक रंगीन टीवी ले आएँ।'' रोहित ने सोचा, रंगीन टीवी लाने का मतलब है छह हजार रुपए। लेकिन उसे कविता का यह प्रस्ताव अच्छा लगा। कुछ जुगाड़ करके घर में रंगीन टीवी आ गया। अब परिवार की शामें टीवी देखते हुए बीतने लगीं। सैटेलाइट टीवी और केबल ने चित्रहार और रविवार की फिल्मों की इच्छाओं को विस्तार दिया और घर में अनेक प्रोग्राम देखे जाने लगे। सब खुश थे...बस रोहित और कविता के बीच की दूरी बराबर बनी हुई थी। वह ना कम हो रही थी और ना बढ़ रही थी। कविता जब शादी करके उनके घर आई थी, तो सिंगल बेड लाई थी और रोहित के लिए शादी का अर्थ ही डबल बेड से शुरू होता था। इस सिंगल बेड पर भी दो व्यक्ति बड़ी आत्मीयता से सो सकते थे। लेकिन जब वे दोनों रात को एक साथ बेड पर होते तो रोहित को अहसास होता कि यह सिंगल बेड कितना बड़ा है। दोनों ने बेड पर ही अपने-अपने कोने तलाश लिए थे। सोते समय अक्सर कविता की पीठ रोहित की तरफ होती। वह कविता की पीठ के हर कर्व से वाकिफ हो गया। एक दिन जब कविता सो रही थी तो उसने अपना एक हाथ बढ़ाकर कविता को छूने की कोशिश की। उसने पाया कि दोनों के बीच लगभग हाथ भर का फासला था। रोहित सोचने लगा कि इस हाथ भर के फासले को उम्र भर चलना पड़ेगा।

मोबाइल के आगमन ने अचानक लोगों के बीच बढ़ रहे फासलों को खत्म कर दिया थ। अब आप कहीं से भी किसी से भी संपर्क कर सकते थे। संचार के क्षेत्र में यह एक बड़ा क्रांतिकारी कदम था। यह भी बीसवीं सदी के आखिरी दशक का ही कोई खास दिन था।

एक दिन उसने कविता से कहा, ऐसा नहीं हो सकता कि हम दोनों अलग रहें। उसने बात को सुना। इस बात का अर्थ समझने में उसे कुछ पल लगे और उसके बाद उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू दिखाई देने लगे। उसे समझ नहीं आया कि शादी के बाद कोई किसी को छोड़ कैसे सकता है? उसने सिर्फ इतना कहा, ''मैं कहाँ जाऊँगी?'' कभी-कभी रोहित को कविता एक बेहद मासूम-सी लड़की लगती। लेकिन पता नहीं क्यों दोनों के बीच फासले कम होने का नाम ही नहीं ले रहे थे। और इस बात का अहसास घर के किसी सदस्य को नहीं था, परिवार के लोग कविता

को बहुत भाग्यशाली मानते थे। उन्हें लगता था कि उसके घर में आने से घर के हालात बदल गए है। यह सच भी था। अब रोहित की तन्ख्वाह भी काफी हो गई था। कविता के साथ रहते हुए ही रोहित को पहली बार इस बात का अहसास हुआ कि पति-पत्नी का मानसिक मिलन हो ना हो तो भी दोनों की देह एक-दूसरे की भाषा समझती हैं। इसी तरह दिन बीत रहे थे।

इधर समाज में अचानक नए मूल्य बनने की बात सामने आने लगीं। कहा जाने लगा कि यह संक्रमण काल है। इसमें पुराने सारे मूल्य टूट रहे हैं और नए मूल्य बन रहे हैं। इन्हीं नए मूल्यों के तहत लड़कियों ने यह कहना शुरू कर दिया था कि ईश्वर ने उन्हें खूबसूरत शरीर दिया है और इसे दुनिया को दिखाने का उन्हें पूरा हक है। और इसी हक के लिए वे इसे सड़कों पर उतारने लगीं। कम्प्यूटर क्रांति ने घरों में सहज भाव से हर तरह की फिल्में देखने की सुविधा मुहैया करा दी। आईपाड जैसी चीजों के जरिये अब आप कैसे भी दृश्य हाथ में लेकर घूम सकते थे। यह भी बीसवीं सदी का ही अंतिम दशक था।

एक दिन रोहित ने गौर किया कि कविता जो भी कपड़े पहनती हैं उनमें उसका तन पूरी तरह ढंका होता है। कई बार उसने कहा भी कि थोड़े मॉर्डन कपड़े बनवा लो। लेकिन वह हर बार पहले जैसे ही कपड़े बनवाती, जो रोहित को बिलकुल पसंद नहीं आते थे। इस बीच रोहित की ज़िंदगी में एक बदलाव यह आया कि आफिस में ही सोनिया नाम की एक लड़की से उसकी गहरी दोस्ती हो गई। सोनिया बिंदास किस्म की लड़की थीं। अवसरों पर उसे ड्रिंक करने से भी गुरेज नहीं था। वह कपड़े भी मॉर्डन पहनती थी। सोनिया को मालूम था कि रोहित शादीशुदा है। लेकिन उसे इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ा और दोनों एक-दूसरे के करीब आते गए। उनकी बढ़ती नजदीकियों ने कविता को रोहित से और दूर कर दिया। और एक दिन रोहित ने कविता से वह बात कह दी जिसे कहने के लिए वह काफी समय से हिम्मत जुटा रहा था। रोहित ने कहा, ''ऐसा नहीं हो सकता कि तुम मेरा पीछा छोड़ दो...तुम चाहो तो इसके लिए मैं तुम्हें पाँच-दस लाख रुपए तक दे सकता हूँ।'' यह बात सुनकर कविता एक क्षण को बहुत दुखी-सी हो गई। फिर उसने रोहित की तरफ इतनी हेय दृष्टि से देखा कि रोहित एक बार को डर गया। यह पहला मौका था, जब कविता रोई नहीं थी। बल्कि उसने पूरे आत्मविश्वास से कहा था, ''क्या तुम सचमुच मुझे छोड़ना चाहते हो?'' रोहित ने बिना मौका गंवाए कहा, ''हाँ मैं तुमसे तंग आ चुका हूँ और अपनी बाकी की ज़िंदगी तुम्हारे साथ नहीं गुजार सकता।''

''तो ठीक है, आप मुझे दस लाख रुपए दे दो मैं इस घर से, आपकी जिंदगी से हमेशा के लिए चली जाऊँगी।''

इस तरह रोहित और कविता के बीच यह समझौता हो गया था। इस समझौते की भनक ना तो रोहित ने और ना ही कविता ने घरवालों को लगने दी थी। रोहित दस लाख रुपए का इंतजाम करने में जुट गया। उसे मालूम था दस लाख रुपए बहुत बड़ी रकम होती है। उसने अब तक के जीवन में एक लाख रुपया भी नहीं देखा था। एकबारगी उसके मन में आया कि जोश में बहुत ज्यादा रुपया बोल गया। अगर कविता से पाँच लाख रुपए के लिए कहा होता तो भी वह मान जाती। लेकिन अब तो जुबान दी जा चुकी थी, अब क्या किया जा सकता था। फिर भी रोहित खुश था। उसे इस बात की खुशी थी कि एक दो साल में दस लाख रुपए का इंतजाम करके कविता से मुक्ति पाई जा सकती थी। इसके बाद वह सोनिया से शादी करने के लिए आजाद होगा और अपनी वे तमाम इच्छाएँ जो बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हुए विकास के कारण जन्मी थी, वह सोनिया के साथ पूरी कर सकता था।

रोहित ने बाहर के काम पकड़ने शुरू कर दिए। वह अनुवाद के कार्य करने लगा। कई अखबारों में उसने कालम लिखने शुरू कर दिए। रेडियो और टेलीविजन के लिए स्क्रिप्ट लिखने लगा। उसके पास काम का इतना बोझ हो गया कि उसे अब कुछ भी सोचने की फुर्सत ही नहीं मिलती थी। शुरू के छह माह में उसने पचास हजार रुपए जमा किए। उसने सोचा, इस हिसाब से तो उसे दस लाख रुपए जोड़ने में दस साल लग जाएँगे। तब क्या किया जाए? एक दिन कविता ने उससे कहा, ''क्यों ना घर में कम्प्यूटर लगा लिया जाए।'' घर में कम्प्यूटर लग गया। कम्प्यूटर पर काम ज्यादा और तेजी से होने लगा। एक दिन रोहित को कम्प्यूटर पर कुछ काम करना था, लेकिन वह बहुत थका हुआ था। तभी कविता ने उससे कहा, ''आप कहें तो मैं टाइप कर दूँ?'' उसे आश्चर्य हुआ। यानी कविता ने टाइप सीख ली थी। तब से यह नियम बन गया। वह बोलता और कविता टाइप करती। कविता उसकी लिखी हर चीज को बड़े करीने से संभाल कर रखती। कभी रोहित सोचता कि कितनी अजीब बात है दोनों पति-पत्नी

इसलिए मेहनत कर रहे हैं कि वे एक-दूसरे से अलग हो सकें। काश! दोनों ने इतनी मेहनत एक दूसरे के करीब आने के लिए की होती।

इस सारे काम के दौरान रोहित ने पाया कि कविता उतनी बुरी नहीं है जितनी उसे लगती थी। एक दिन कविता ने रोहित से कहा, ''क्यों नहीं आप कोई उपन्यास लिखते?''

''उपन्यास, उससे क्या दस लाख रुपए मिल जाएँगे?''

''हाँ, लंदन में एक कंपीटीशन निकला हुआ है, अगर आपके उपन्यास को प्रथम पुरस्कार मिल गया तो आपको दस लाख रुपए मिल जाएँगे।''

''यानी प्रथम पुरस्कार दस लाख का है?''

कविता ने एकदम शांत भाव से कहा, ''हाँ दस लाख का और उसके बाद आप मुझे छोड़ सकेंगे।''

रोहित को बहुत लंबे समय बाद कविता आज अच्छी लगी। उसने देखा कविता की उंगलियाँ अब भी उतनी ही सुंदर हैं।

रोहित ने उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। उपन्यास का नाम रखा ''बीसवीं सदी के आखिरी दशक की एक मौन प्रेम कथा।'' वह उपन्यास के बारे में अक्सर कविता से भी चर्चा करता। रोहित ने पाया कि वह उपन्यास में कविता की सलाह और सुझावों को अनदेखा नहीं कर पाता। अब रोहित और कविता दोनों के पास एक ही लक्ष्य था। उपन्यास पूरा करना। उपन्यास पूरा करने के लिए छह माह का समय था। इस दौरान रोहित कविता पर इतना निर्भर हो गया कि उसके बिना कुछ नहीं कर पाता था। रोहित ने छह माह से पहले ही उपन्यास पूरा कर लिया और उसे लंदन भेज दिया। अब निर्णय का इंतजार था। रोहित और कविता में बातचीत होने लगी, लेकिन दोनों में से कोई भी इस विषय पर बात नहीं करता था कि यदि रोहित को ईनाम मिल गया तो क्या होगा? कविता जरूर कह देती थी कि ईनाम मिले या ना मिले इस बहाने एक उपन्यास तो लिखा गया।

वक्त गुजरता रहा। एक दिन जब रोहित शाम को घर पहुँचा तो उसने देखा कि कविता के चेहरे पर गजब का तेज है। उसने कारण पूछा तो कविता ने बताया, ''बधाई हो आपके उपन्यास को 'फर्स्ट प्राइज' मिला है।'' रोहित को यकीन नहीं हुआ। लेकिन कविता के हाथ का पत्र बता रहा था कि वह जो कह रही सच कह रही है। अब उसे दस लाख रुपए मिल जाएँगे और लंदन की यात्रा भी हो जाएगी। अच्छी बात यह थी कि लंदन में अपने साथ एक व्यक्ति को ले जाने की छूट थी। यानी वह अपने साथ कविता को भी ले जा सकेगा।

जल्दी-जल्दी में रोहित ने दोनों के पासपोर्ट बनवाए और फिर तय समय पर दोनों लंदन रवाना हो गए। यह पहला मौका था जब वे वायुयान में बैठ रहे थे। कविता पहले तो जाने के लिए राजी ही नहीं हो रही थी। बड़ी मुश्किल से रोहित और सारे घरवालों के दबाव के सामने वह झुकी।

जब दोनों लंदन से साथ लौटे तो बेहद खुश थे। सारे मीडिया में रोहित और कविता की तस्वीरें छपी थीं। रोहित अचानक 'बड़ा आदमी' हो गया था। उसके पास बधाइयों के ढेरों फोन आ रहे थे। कविता भी बेहद खुश थी। फिर वह दिन भी आ गया जब रोहित बैंक से दस लाख रुपए का चैक कैश करा कर घर पहुँच। इतने सारे नोट रोहित ने पहले कभी नहीं देखे थे। जब रोहित घर पहुँचा तो उसने देखा कविता अपना सामान पैक करके बैठी है और उसके चेहरे पर एक अजीब-सा सूनापन है। रोहित यह बात लगभग भूल ही गया था कि इन दस लाख रुपयों के एवज में उसे कविता को छोड़ना होगा। रोहित ने पैसों से भरा बैग कविता के पास ले जाकर रखा। कविता ने पैसों की ओर देखा तक नहीं। बस वह रोहित को ही देखती रही।

कुछ देर दोनों के बीच चुप्पी पसरी रही। फिर कविता ने उठते हुए कहा, ''मैं चलूँ?'' रोहित एक पल के लिए स्तब्ध हो गया। कुछ पल बाद रोहित ने कहा, ''नहीं, अब तुम कहीं नहीं जाओगी। अब हमें साथ-साथ और भी बहुत काम करना है। और मैं तुम्हारे बिना अब कुछ भी नहीं कर सकता। और हाँ, एक बात मै। तुमसे बहुत समय से कहने की सोच रहा था कि तुम्हारी उंगलियाँ बहुत खूबसूरत हैं।''

इतना कहते ही कविता के वे आँसू जो न जाने कब से रुके हुए थे अचानक बह निकले। रोहित ने भी उन्हें पोंछने की कोई कोशिश नहीं की। बस इसी तरह रोते-रोते कविता रोहित के गले लग गई। रोहित के दिल से आवाज आई, ''कौन कहता है कि बीसवीं सदी का अंतिम दशक प्रेम विरोधी दशक है?''

♦♦♦

किराए का कमरा

गीता डोगरा

मैं बड़ी दुविधा में था। मुझे उसके प्यार का कोई अन्दाजा नहीं हो रहा था। मैं तो उस पर मर-मिटने को तैयार था, पर वह ऐसा कोई संकेत ही नहीं कर रही थी। सैली ने बताया था कि लड़कियाँ बहुत जल्दी अपने प्रेम का इजहार नहीं करतीं। यह सोचकर मैं आश्वस्त होकर अपने कमरे की उस खिड़की के पास जा कर बैठ गया, जहाँ से मैं अक्सर उसे देखा करता था।

पूरे दो दिन के बाद वह नहाया था, उसे लगा उसके शरीर से मुर्दा जलाने की दुर्गंध आ रही थी। अपने ही शरीर से आ रही सड़ांध से उसे उबकाई-सी आ रही थी। अभी वह बाथरूम से बाहर निकला ही था कि बाहर कालबेल सुनाई दी।

इस वक्त कौन हो सकता है?...कपड़े जल्दी पहनने के चक्कर में उसने शर्ट उल्टी पहन ली थी। दरवाजा खोला तो सामने तुलसी थी।

'कहाँ रहे रात भर? सारी रात तुम्हारे अंकल परेशान रहे।'

'मेरे दोस्त का एक्सीडेंट हो गया था, बस उसी के पास था।'

'फोन तो कर सकते थे?'

'हाँ, पर यूँ ही, वो क्या है कि...'

'बस-बस, रहने दो...मुझे मार्केट तक जाना है। तुम मुझे वहाँ तक छोड़ दो...।' कहते-कहते वह मुड़ गई। उसने सुनना ही नहीं चाहा कि मैं जाना भी चाहता हूँ या नहीं। मुझे खुद पर झुंझलाहट हो रही थी कि मैं चीख कर अपनी बात क्यों नहीं कह सकता। हर बार आती है और अपना फैसला सुनाकर चल देती है। मैं हूँ कि न चाहते हुए भी उस पर अमल करने लगता हूँ।

मैं कुर्सी पर बैठ कर बूटों के फीते खींचने लगा। मेरा क्रोध या तो इन पर निकलता था या कपड़ों पर, जिन्हें मैं पोटलियाँ बना-बनाकर इधर-उधर फेंक देता और जब गुस्सा शांत होता तो सही जगह पर लगाता।

'चलो थोड़े ही दिनों की तो बात है। मैं यह घर बदल ही लूँगा।' सैली ने विश्वास दिलाया है कि जल्दी ही मुझे एक ऐसा कमरा दिला देगा, जहाँ कम-से-कम तुलसी नहीं होगी। पिछले कुछ दिनों से मैं कमरा ढूँढ रहा हूँ पर हर जगह से अकेला जवान लड़का कह कर विदा कर दिया जाता है। हर घर में जवान लड़की होती है और मैं अकेला...।' सैली मेरी इस हालत पर खूब हँसा और कहता 'भई, तुम तो लकी हो, तुलसी आंटी सब की किस्मत में कहाँ होती है?'

सम्पर्क: 379, फ्रेंड्स कॉलोनी, डी.ए.वी. कॉलेज रोड, जालंधर,
दूरभाष : 0181-2472379

मैं इन सब बातों से अब खीझ उठता हूँ। पर मजबूर था। शहर में नई-नई नौकरी थी। कंपनी ने जालंधर में ही मेरी पहली पोस्टिंग की थी। एक तरह से तो मैं खुश ही था। पहली बार शहर आया था। कुल जमा दो तक ही पढ़ाई की थी। घर के हालात ऐसे थे कि आगे पढ़ नहीं पाया। किस्मत अच्छी थी कि पिता जी के दोस्त ने मेरी गारंटी भरी और एक प्राइवेट कंपनी ने मुझे नौकरी पर रख लिया। वहाँ सैली ही था, जिससे मैं पहले ही दिन घुल-मिल गया था। उसी ने यह कमरा दिलवाया था। हालाँकि राय साहिब ने तो न कर दी थी पर तुलसी की आँखों ने शायद मेरी विवशता भाँप ली थी। उसने राय साहिब के कानों में जाने क्या मिसरी घोली कि वे मान गए।

मैंने अपने जीवन में इतनी सुंदर स्त्री नहीं देखी थी। मैं कितनी ही देर टुकुर-टुकुर उन्हें देखता रहा। जब राय साहिब ने मेरी इस बात का नोटिस लिया तो बोले, 'बरखुरदार, रिश्ते में ये तुम्हारी आंटी ही लगती हैं, तुलसी आंटी... समझे। अब तो तुम इस परिवार के एक सदस्य ही हो। मेरी गैरहाजिरी में जब कभी भी इसे किसी चीज की जरूरत हो तो तुम ला दिया करना। तुम हमारे किरायेदार ही नहीं, बल्कि परिवार के सदस्य जैसे ही हो। बात तो समझने की है।'

'घबराते क्यों हैं अंकल। अपना बचन सिंह बड़ा काम का बंदा है जी। फिर मेरा तो लंगोटिया यार है, मैं पूरी गारंटी ले रहा हूँ न इसकी।' सैली ने कहा।

'ठीक है सैली। मैं भी तो तेरा ही लिहाज रख रहा हूँ। जा पुत्तर, तूँ अपने कपड़े लत्ते ले आ....'

सैली ने उनके हाथ में सौ-सौ के तीन नोट रखे और कमरे को ताला लगा कर चाबी मेरी जेब में डाल दी। वहाँ से लौटते समय मुझे लगा, मैं बड़े काम का बंदा हूँ, राय साहिब के काम का बंदा। सैली ने भी मेरी जिम्मेवारी ऐसे ही थोड़े ले ली है। फिर अब मेरे पास अपना कमरा है। अपनी मर्जी से सो सकता हूँ, खा सकता हूँ। मन चाहे तो जोर-जोर से गा भी सकता हूँ। व्यास वाले घर में जब भी गुनगुनाता, पिता जी बोलना शुरू कर देते थे..., 'और, सुर अच्छा न हो तो ऐंवे हेक नहीं लगानी चाहिए...।' मैं बस वहीं चुप हो जाता था। सैली के साथ वहाँ से वापसी पर मैंने उससे पूछा, 'यार, जिसे तुम तुलसी आंटी कह रहे थे, वह तो राय साहिब से छोटी हैं न।'

'छोटी। उनकी बेटी की उम्र की है...।'

'तो फिर यह शादी...?'

'सब चलता है यार। जमाना चाहे कितना बदल जाए, पर इन्सान की मजबूरियाँ तो नहीं बदलतीं। राय साहिब के पास इतना पैसा है कि तीन पीढ़ियाँ बैठकर खा सकती हैं...पर औलाद होती नहीं। यह तीसरी बीवी है, दो मर चुकी हैं। तुलसी के माँ-बाप निहायत ही गरीब हैं।'

'पर तुलसी कैसे मान गई?'

'यह तो परमात्मा जाने...पर तुलसी है बड़ी चीज...' सैली ने अपनी दाईं आँख दबाई। मैं समझ नहीं पाया कि कोई लड़की चीज कैसे हो सकती है?

मुझे कमरे में रहते बहुत दिन हो गए थे। राय साहिब के साथ-साथ तुलसी भी मेरा बहुत ख्याल रखती थी। एक बात मैंने महसूस की कि तुलसी को आंटी कहना मेरे लिए मुश्किल था। मैं जब भी आवाज देता तो इस शब्द को छोड़ ही जाता और एक दिन मौका पाकर मैंने यह बात तुलसी को बता भी दी। वह चुपचाप सुनती रही और फिर धीरे से मुस्करा दी। मैं फिर बिटर-बिटर उसे ताकने लगा।

'तुम इस तरह क्यों देखते रहते हो?' तुलसी ने पूछा।

'कुछ नहीं।'

'बताओ न...' वह जिद करने लगी।

'तुम बहुत सुन्दर हो।'

'बस...।'

अब मैं उसका चेहरा देख हा था, जैसे उसकी आँखों में डूब ही जाना चाहता था।

'तुम ऐसे देखते हो तो मुझे कुछ-कुछ होने लगता है।' उसने घुटनों में अपना चेहरा छुपा लिया था। स्वयं मेरे अन्दर भी एक ऐसी ही हलचल-सी हो रही थी और मेरा दिल जोर-जोर से धड़क रहा था। पर यह सब मुझे बहुत अच्छा भी लग रहा था। मैं जो चाहता था मुझे मिल रहा था, मेरी मंजिल अब पास ही थी।

'तुम्हारी उम्र कितनी है?'

'उन्नीस साल तीन महीने...।' उसने चेहरा ऊपर किया।

'और राय साहिब की?'

'पचास से ऊपर है।'

'फिर यह शादी?'

'बाबा ने कर दी...। वह सहज थी।'

'...तो तुम्हें बुरा नहीं लगा?'

'नहीं तो, बुरा क्यों लगता। जानते हो, राय साहिब बड़े अच्छे हैं...।' पर इस बार वह उदास भी हो गई थी। मैं तो चाहता था कि वह कहे कि वो खुश नहीं है। तब मैं उसे सांत्वना देता, उसे सीने से लगाता...और उसके साथ जीने-मरने की कसमें खाता। पर उसके मुँह से राय साहब की तारीफ सुनकर मुझे अपनी सारी आशाओं पर पानी फिरता नजर आया।

मैं एक झटके से उठ खड़ा हुआ और बोला, 'मैं गाँव जा रहा हूँ। शायद दो-तीन दिन न लौटूँ...।'

'यह कैसे हो सकता है? परसों मैं राय साहिब के साथ बाहर जा रही हूँ और मेरे कपड़े दर्जी के पास हैं, तुम्हें मेरे साथ बाजार चलना है।'

'सिर्फ बाजार जाने के लिए ही मुझे रोक रही हो?'

'हूँ...। वह मुस्कराहट फेंकती हुई बोली। मैंने कहा न कि तुम नहीं जाओगे तो इसका मतलब कि नहीं जाओगे।'

'तो तुम्हें भी एक वायदा करना होगा कि तुम भी मुझे यहाँ अकेला छोड़कर कहीं नहीं जाओगी।' वह सोच में पड़ गई, फिर वह हँसती हुई चली गई।

मैं बड़ी दुविधा में था। मुझे उसके प्यार का कोई अन्दाजा नहीं हो रहा था। मैं तो उस पर मर-मिटने को तैयार था, पर वह ऐसा कोई संकेत ही नहीं कर रही थी। सैली ने बताया था कि लड़कियाँ बहुत जल्दी अपने प्रेम का इजहार नहीं करतीं। यह सोचकर मैं आश्वस्त होकर अपने कमरे की उस खिड़की के पास जा कर बैठ गया, जहाँ से मैं अक्सर उसे देखा करता था।

उस दिन की शाम मैंने और तुलसी ने घूमने-फिरने में बिताई। उसने दर्जी से कपड़े लिए, नए जूते खरीदे। फिर हमने रैणक बाजार से चाट खाई और घर लौट आए। राय साहिब सामने दालान में कुर्सी डाल कर बैठे थे। मैं अन्दर तक काँप गया। उस दिन उन्होंने ठीक से मुझे बुलाया तक नहीं। मैं पाँच-दस मिनट तक बैठा। फिर ऊपर आ गया। मुझे लग रहा था कि मेरी चोरी पकड़ी गई है। सारी रात ठीक से सो भी न पाया। अगली सुबह तुलसी मेरी चाय लेकर भी नहीं आई तो मेरा शक विश्वास में बदल गया। मैं बुझे मन से तैयार हुआ और दफ्तर चला गया।

तीसरा दिन तुलसी के इम्तहान का दिन था। मैं जल्दी ही उठ बैठा। मैं देखना चाहता था कि तुलसी राय साहिब के साथ बाहर जाती है या नहीं। मैंने खिड़की से नीचे झाँका तो कोई भी नजर नहीं आ रहा था। शायद अन्दर तैयारी कर रहे हों...। सोचते ही मेरा कलेजा मुँह को आने लगा। मैंने कागज पैन उठाया और प्रभु का नाम लेकर औसियाँ डालने लगा। छोटी-छोटी लकीरें मार कर उन्हें काटता और बोलता जाता कि तुलसी जाएगी, तुलसी नहीं जाएगी...। और अंत में आया कि तुलसी नहीं जाएगी...मेरी तबीयत खुश हो गई। अब मैं इत्मीनान से बैठ गया था। खिड़की में से मैंने झाँका तो सब ठीक ही लगा...। मैं गुनगुनाने लगा।

कई दिन बीत गए। तुलसी ने ऊपर आना छोड़ दिया। मैंने दो-तीन बार एक जवान लड़का देखा। पता चला कि कोई रिश्तेदार है। घर के सारे कामकाज राय साहिब मुझे सुबह ही समझा जाते। नीचे कभी-कभार तुलसी मिल जाती तो बड़ा शर्माती-सी कहती, 'मन तो करता है तुम्हारे साथ बाहर जाऊँ। पर जा नहीं सकती।'

'क्यों, क्या मेरे साथ अब अच्छा नहीं लगता?'

'नहीं, यह बात नहीं है।'

'तो क्या राय साहिब ने मना कर दिया?'

'हाँ।'

'क्या, उन्हें पता चल गया?'

'किस बात का?'

'यही कि हम दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे हैं।'

जवाब में उसने जोर-जोर से हँसना शुरू कर दिया। 'बचन सिंह, कहीं यह बात राय साहिब के सामने न कह देना। कमरे से तो निकलोगे ही, शहर में भी ठिकाना नहीं मिलेगा...।'

मैं सकते में आ गया था, लगा जैसे पाँव के नीचे जमीन है ही नहीं...वह हँसती हुई कमरे में वापिस चली गई और मैं हतप्रभ–सा वहीं खड़ा रहा।

मैं समझ नहीं पा रहा था कि तुलसी की सारी सुन्दरता अचानक कैसे गायब हो गई थी?

मेरा मन न तो कमरे में ही लगता था न ही दफ्तर में...सैली को जब मैंने बताया तो वह हँसते हुए बोला, 'तू ऐंवे उदास न हो थोड़े दिन उससे दूर रह, आपे ही तेरे रास्तों में पलकें बिछाने लगेगी। औरत जात में यही तो मार है, उसकी तरफ देखो तो टाँगे मारती है, जरा–सी नजर हटाई नहीं कि बस...पीछे आ जाएगी, आखिर उस बुड्ढे में है ही क्या?'

सच ऐसा ही हुआ, मैंने सोचा सैली बड़ा तजुर्बेकार है। सो मैंने उसे ही अपना सलाहकार बना लिया।

अब मैं गाँव कम ही जाता, मुझे लगता कि अगर मैं गाँव गया तो तुलसी मेरे हाथ से निकल जाएगी। वह रिश्तेदार लड़का अक्सर तुलसी के आसपास ही दिखता। सो, अब मैं तुलसी की एक आवाज पर ही दौड़ पड़ता। उसके सारे काम मैं ही करता, बदले में तुलसी कभी–कभी बड़े प्यार से खाना खिलाती। चाय तो वह अक्सर पिला ही देती थी।

राय साहिब को भी मुझसे किसी प्रकार की शिकायत नहीं थी। मैं तुलसी के निकट पहुँच रहा था। मैं उससे अक्सर ख्यालों में भी बातें करता। मेरी बीस साल की उम्र में यह पहली बार हो रहा था कि मैं उसे अब छू सकता था। आसपास कोई न रहता तो उसके गालों को भी छू लेता, पर ऐसा करते समय मैं अक्सर पसीने से नहा जाता। इस पर तुलसी खूब हँसती।

सैली बार–बार मुझे समझाता कि मुझे राय साहिब की नजरों से बचना चाहिए। पर मैं सोचता था कि राय साहिब निहायत ही बेवकूफ किस्म के इन्सान हैं। मैं सैली को बताने लगा कि तुलसी भी मुझे छुप–छुपकर देखती है तो वह हँस पड़ा और बोला, 'कमाल है रांझेआ, तुसी ते साडा जलंदर ही लुट लेआ। सारा शहर तुलसी ते फिदा सी बाजी मार गए तुसीं।'

उसकी इस बात पर मैं बाजार में सीना तान कर चलने लगा। मुझे एहसास हुआ कि सचमुच मैं दीवाना–सा हूँ, जो अपनी ही धुन में चला जा रहा हूँ। कोई वक्त आएगा जब मेरे और तुलसी के चर्चे सरेआम होंगे। फिर एकाएक मेरे सामने बापू का चेहरा घूमा, फिर राय साहिब का। एकाएक पसीने से मेरी पेशानी भीग गई। हे भगवान! बुरा वक्त न ही आए।

एक दिन राय साहिब तेजी से मेरे कमरे में आए और इधर–उधर नजरें दौड़ाते बोले, 'तुमने तुलसी को देखा है?'

'नहीं।' मैं हड़बड़ा कर बिस्तर से उठ बैठा।

'वह कहाँ जा सकती है?'

राय साहिब जितनी तेजी से आए थे उतनी ही तेजी से चले भी गए। मैं उनके पीछे–पीछे नीचे आ गया। राय साहिब ने धीरे–से बाहर का दरवाजा खोला और गली में जाकर खड़े हो गए। थोड़ी देर बाद अन्दर आए और दालान में पड़ी कुर्सी पर बैठ गए।

'हुआ क्या?' मैं सब–कुछ जानने को बेताब था।

'दरअसल व कल से नाराज थी। शायद मुझे परेशान करने के लिए ही वह चुपके से माँ के घर चली गई।'

'आप मुझे पता दें तो मैं ही जाकर उसे ले आता हूँ।'

'नहीं। लगता है वह शाम तक तो आ ही जाएगी। वरना मैं रात को जाकर ले आऊँगा।'

पर वे नार्मल न थे। मैं उठने लगा तो बोले, 'मुझे यकीन है तुम यह बात किसी को बताओगे नहीं।'

'क्या बात करते हैं? भला घर की बातें किसी को बताई जाती हैं?'

उन्होंने बड़ी कृतज्ञता से मुझे देखा। दरअसल मैं तो राय साहिब से भी ज्यादा परेशान था। तुलसी कहाँ चली गई? हाय मेरी तुलसी, मैं तुझे कहाँ ढूँढूँ?

मेरा मन कर रहा था राय साहिब को कालर से पकड़ लूँ और बत्तीसी बाहर निकाल दूँ। कमबख्त ने बेचारी की कद्र ही नहीं डाली।

वह प्यार चाहती होगी और इस बुढ़ऊ के पास देने को है ही क्या? वह एकदम भोलीभाली–सी गुड़िया...। मेरा मन रोने को कर रहा था। उस दिन मैंने छुट्टी ले ली थी और राय साहिब के पास ही बैठा उसका इन्तजार करता रहा। पर रात तक कोई पता नहीं चल

सका। आठ बजे के आसपास राय साहिब उठकर तुलसी के घर चले गए, मुझे यह कहकर छोड़ गए कि शायद तुलसी इधर ही न आ जाए। पर राय साहिब बैरंग ही लौट आए।

पूछने पर वे कुछ बताते न थे। इसी तरह दस दिन बीत गए। मेरा बुरा हाल था। एक साथ कई डरवाने से ख्याल मन में आते। लगता कि हो न हो उसने जरूर आत्महत्या कर ली होगी। अगर ऐसा हुआ तो जरूर यह बुढ़ऊ मेरे हाथों मारा जाएगा। मेरी मुट्ठियाँ भिंच गईं। बड़ी मुश्किल से मैंने स्वयं को काबू किया। अगले दिन सुबह ही सैली आ धमका। मैं समझ गया जरूर तुलसी की ही कोई खबर होगी। मेरे कारण वह भी परेशान था। उसने बताया कि तुलसी राय साहिब के भतीजे के पास है और उसी के पास रहना चाहती है। मेरी आँखों के आगे तुलसी व उस जवान लड़के का चेहरा घूमने लगा। पिछले महीने वह यहीं आया हुआ था। उन्हीं दिनों तुलसी ने ऊपर आना भी लगभग छोड़ ही दिया था। कमबख्त, राय साहिब का नाम ले रही थी। मेरा मन कर रहा था मैं जोर-जोर से रो दूँ।

सैली खामोश बैठा था। मेरी एक पूरी दुनिया को लुटते हुए वह देख रहा था।...और मैं उसे बता रहा था कि मैं अपने गाँव की तमाम यादों को भुलाकर तुलसी के कितने काम करता था...। सर्दियों के पहले पहर उठकर दूध लाना, तुलसी के लिए गर्म पानी करके देना, उसे बाजार लेकर जाना और जाने कितने नाज नखरे उठाना। 'मैं अब यहाँ नहीं रहूँगा...' कहकर मैंने सचमुच रोना शुरू कर दिया। सैली मुझे हौसला देता रहा कि वह जल्दी ही मुझे नया कमरा दिला देगा।

अभी थोड़े दिन ही गुजरे थे कि राय साहिब के साथ मुझे तुलसी अन्दर आती दिखाई दी। तुलसी को देखते ही मैंने मुँह फेर लिया और तैयार होकर दफ्तर निकल गया। मैंने सैली को कह दिया था कि वह किसी भी कीमत पर वहाँ नहीं रहेगा। दो दिन मैं सैली के घर ही रहा, न नहाया और न ठीक तरह से खाना खाया। दो दिन बाद लौटा तो तुलसी का इस तरह अनौपचारिक मेरे कमरे में आना मुझे अच्छा नहीं लगा था। पर कर भी क्या सकता था, उसका तो वही व्यवहार था, पर मुझे तो तकलीफ थी। अचानक तुलसी ने नीचे से आवाज दी तो मैं खीझ पड़ा। कमबख्त धौंस तो ऐसे देती है जैसे मैं इसका खरीदा हुआ गुलाम हूँ। मैंने झटके से दरवाजा बन्द किया और नीचे आ गया। तुलसी तो पहले से ही तैयार थी। झट से साथ हो ली। स्कूटर पर बैठते ही बोली, 'रैणक बाजार तो जाना ही है, पर अगर तुम शेखां बाजार की तरफ से निकाल लो तो...'

'नहीं, मैं आपको रैणक बाजार ही उतार दूँगा, मुझे कुछ जल्दी है।' 'क्या बात है, कुछ उखड़े-उखड़े से लग रहे हो। कहीं दिल-विल तो नहीं लग गया?' उसने स्कूटर पर बैठे ही मेरी बाँह पर चुटकी काट ली।

मैं खामोश रहा और उसे बाजार में उतार कर वापिस मुड़ने लगा तो वह बोली, 'किस बात पर नाराज हो। पहले तो तुम कभी ऐसे मूड में नहीं दिखे थे।'

मैं चुप रहा।

'वहाँ चलो, सामने रेस्तरां है। कुछ देर बैठते हैं।'

'नहीं।' मैंने सख्ती से कहा और बिना उसकी ओर देखे मैंने स्कूटर मोड़ लिया।

इस घटना को चार दिन बीत गए थे, मैं रात गए घर लौटा और सुबह बिना कुछ किसी को बताए निकल गया। मेरी तरफ तुलसी बड़ी गौर से देखती पर मैं यह शो कर रहा था कि मैं कुछ भी नहीं देख रहा।

उस दिन शाम को मैं लौटा तो साथ सैली था। मुझे एक नई जगह कमरा मिल गया था। बस सामान ही उठाना था। घर पहुँचे तो काफी तामझाम था। मुझे देखते ही राय साहिब खुश हो गए। वे उठे और लड्डू मेरे मुँह में ठूँसते हुए बोले, 'देखो, तुलसी ने दुनिया भर की खुशियाँ मेरी झोली में डाल दी, मैं बाप बनूँगा और कइयों के मुँह पर ताले लग जाएँगे।' मैं उन्हें बधाई देता हुआ कहने लगा, 'मेरा ट्रांसफर हो गया है, सुबह ही रिपोर्ट करनी है...थोड़े ही दिनों में आपसे मिलने आऊँगा और बात करेंगे।'

****

अब मैं नए घर में आ गया हूँ। कमरे के ठीक सामने लॉन है, जहाँ तरह-तरह के फूल खिले हुए हैं। मालती मेरे मकान मालिक की खूबसूरत बेटी है। वह हर रोज फूल तोड़ने आती और मैं उसे देखता रहता हूँ। उसके लम्बे बाल मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। वह भी देख कर मुस्कुराती है। शायद मैं उसे अच्छा लगने लगा हूँ। किसी दिन अच्छा अवसर देखकर मैं उससे जरूर बात करूँगा।

♦♦♦

राइट टु एजुकेशन

सुमन बाजपेयी

आत्महत्या करना क्या साहसी होने का प्रतीक होता है? हार मान जाओ और संघर्ष न कर सकने की हिम्मत अपने भीतर पैदा न कर सको और टूट कर आत्महत्या कर लो...यह तो कायरता हुई न...मेरी बिट्टो, तुम कायर क्यों निकलीं...मेरी सुरक्षा ने तुम्हें कभी जिंदगी की सच्चाइयों से रु-ब-रु होने ही नहीं दिया और एक बार में ही तुम टूट गईं...बताया तक नहीं उन्हें...एक बार तो अपना दर्द बाँट लेती तुम...

हिंदी मीडियम फिल्म की चर्चा और इरफान खान की उसमें एक्टिंग के बारे में दोस्तों से इतना सुना कि पहुँच ही गई उसे हॉल में देखने के लिए। वरना हॉल में वह अब कम ही जाती हैं फिल्में देखने। नरेंद्र ने ही कहा था चली जाओ, थोड़ा चेंज हो जाएगा, वरना घर से निकलना तक बंद कर दिया है तुमने। बिट्टो फर्स्ट डे फर्स्ट शो देखना टशन मानती थी और उसे वह मना कर ही नहीं सकती थीं। पर अब अकेले कम ही जाती हैं, नरेंद्र ने तो न सिर्फ उनसे, वरन दुनिया से ही खुद को अलग-थलग कर लिया है। बहुत अच्छी फिल्म थी और एक सशक्त सोशल मैसेज भी था। देखकर लौटीं तो अचानक बहुत सारे विचारों ने दिमाग को मथना शुरू कर दिया-समाज, परिवार और भावनाओं से जुड़े ऐसे सवालों ने जिनकी वजह से उनका खुद का वजूद हिलकर रह गया था।

एजुकेशन सिस्टम का मजाक तो न जाने से कब से उड़ाया जा रहा है, शायद जब से शिक्षा ने व्यवसाय का रूप ले लिया है। फिल्म इस बात को बारीकी से उठाती है कि अंग्रेजी माध्यम और महंगे स्कूलों की होड़ में माता-पिता बिना सोचे-समझे शामिल हो जाते हैं, मानो इन स्कूलों में दाखिला होते ही उनके बच्चे बड़े आदमी बन जाएंगे। वे इसके लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। यह स्टेटस सिंबल का भी प्रतीक होता है।

अमीरों के बच्चे चाहे जहाँ पढ़ सकते हैं बस डोनेशन देने की बात है, पर गरीबों के हिस्से सरकारी स्कूल ही आते हैं। ठीक है इस पर वह आलोचनात्मक रुख नहीं रखती हैं। पर एक बात वह मानती हैं कि अगर गरीब का बच्चा अमीरों के बच्चों के साथ पढ़ेगा तो न तो वह उनके स्टैंडर्ड के साथ तालमेल बिठा पाएगा और न ही संस्कारों के साथ। परिवेश एकदम अलग और सोच भी एकदम अलग...गरीब-अमीर का भेद समाज का चलन है और इसे चुटकियों में नहीं मिटाया जा सकता है। सदियाँ लगेंगी... पर ईडब्ल्यूसी (इकोनॉमिक वीकर सेक्शन) कोटे के तहत जो गरीब बच्चों को दाखिला बड़े स्कूलों में दिया जाता है, उसका सच जान उनका मन अवश्य विचलित हो गया था। राइट टु एजुकेशन के तहत प्राइवेट स्कूलों को 25 पर्सेंट गरीब बच्चों को भी एडमिशन देना होता है। वे गरीब बच्चे दाखिला तो लेते हैं पर वहाँ के कल्चर के साथ तालमेल न बिठा पाने के

सम्पर्कः 12, एकलव्य विहार, सेक्टर-13, रोहिणी दिल्ली-110085,
ई-मेल-sumanbajpai@yahoo.co.in

कारण बीच में ही छोड़कर चले जाते हैं और इस तरह उस कोटे की सीटें अपने आप खाली हो जाती हैं और उन्हें अमीर बच्चों को दे दिया जाता है।

लेकिन इसके दूसरे पहलू को कोई नहीं सोच पाता... वे अमीर –गरीब, जात–पात को नहीं मानतीं पर संस्कारों व परवरिश को जरूर तरजीह देती हैं। जरूरी भी है, इसे नकारा नहीं जा सकता है। संस्कारों व सही सोच जिंदगी जीने के लिए जरूरी है और शादी जैसे पवित्र रिश्ते में बंधने और उसे निभाने के लिए भी। गरीबों में या कमजोर वर्ग के तबकों में संस्कार नहीं होते या वे अपना विवाह नहीं सहेज कर रखते, वह इस बात को नहीं मानतीं, पर यह तो सच है कि शिक्षा व दुनिया को देखने, या खुद चीजें एक्सप्लोर करने से नजरिये में तो बदलाव आ ही जाता है। इंसान जिस तरह के माहौल में पल कर बड़ा हुआ होता है, उसे पैसे की बहुलता से तो बदला या परिष्कृत नहीं किया जा सकता है।

करवटें ही बदलती रहीं वह रात भर। उनका घाव जो बरसों पहले उनके भीतर उतर आया था, वह आज तक भर ही नहीं पाया है। टीसें हैं कि किसी न किसी बात से नुकीली चट्टानों की तरह उनके मन को चुभने लगती हैं। उनका घाव शरीर का नहीं है, मन का है... बिट्टो का मासूम चेहरा उनकी आँखों में उतर आया... पछताती हैं वह आज भी उसे एक नामी–गिरामी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाकर। उनकी फूल सी बिट्टो कहीं धूप और तेज हवाओं के थपेड़े से कुम्हला न जाए, इसलिए एयरकंडीशंड स्कूल चुना था। ड्राइवर रोज कार में उसे स्कूल छोड़ता और ले जाता।

'बेटी को इतनी नाजुक भी मत बनाओ रागिनी की वह हवाओं के रुख को न झेल सके। आज हमारी हैसियत है कि उसे हर सुख–सुविधा दे सकें...पर कल की किसने जानी है। जीवन को समझने के लिए रास्तों की धूल फाँकना और मौसम के ताप और बारिश को झेलना बहुत जरूरी है।' नरेंद्र कितना टोकते थे उन्हें। गाँव के जीवन से निकल शहर के बड़े उद्योगपति बन जाने के बावजूद वह धरती पर ही अपने पाँव टिकाए रखते थे। पर रागिनी ने कभी उनकी बात नहीं सुनी।

'आप भी न जाने कैसे पिता हैं, बेटी है वह फूल सी नाजुक, कोई लड़का नहीं जो उसे सड़कों पर पाँव रखने दूँ। हमारी इकलौती बच्ची है, सब कुछ उसी का है, फिर क्यों नहीं उसे एक सुखद जिंदगी दूँ। उसकी परवरिश आप मुझ पर छोड़ दें। देखिएगा एक दिन गर्व होगा आपको उस पर। रही बात जीवन के फलसफे को समझने की तो वक्त आने पर समझ जाएगी कि क्या सही है और क्या गलत।'

वही गलत साबित हुईं थीं...कहाँ समझ पाई थी बिट्टो जीवन के फलसफे को...सतरंगी सपनों की उड़ान भरती रहती थी हमेशा. ..हकीकत के परों को नोच वह केवल बाहरी सच के आसमान में ही चक्कर लगाती रही और सोचती रही कि कितनी प्यारी है उसकी दुनिया।

आज तो सुबह भी होने का नाम नहीं ले रही थी, वह उठीं और बरामदे में आकर बैठ गई। सर्दियों की गुनगुनाहट मौसम पर पसर चुकी थी। शॉल को अच्छे से लपेट लिया उन्होंने अपने शरीर पर। बिट्टो को सर्दियाँ कितनी अच्छी लगती थीं। खिल–खिल जाती थी वह और रजाई तक उतार कर फेंक देती थी। कहती थी, ''मॉम, लेट मी एंज्वॉय विंटर, आई लाइक द चिली एयर्स...इट गिव्स ए सूदिंग इफेक्ट।''

उनके आँखों के कोर भीग गए। बिट्टो की बातें हर पल याद आती हैं उन्हें। कैसे मान लें वह कि वह अब केवल यादों का हिस्सा बन चुकी है। कभी नहीं देख पाएँगी वह उसे दुबारा और न ही जीवन भर वह स्वयं को माफ कर पाएँगी। नरेंद्र हर क्षण उन्हें यही एहसास कराते रहते हैं कि बिट्टो को उन्होंने उन्हीं की वजह से खोया है। कैसे कह सकते हैं वह ऐसा...कोई माँ क्या अपने बच्चों का बुरा चाहती है, फिर बिट्टो तो उनके जिगर का टुकड़ा थी, उनकी पूरी दुनिया उसी के ईद–गिर्द घूमती थी...वह चाहती थीं कि वह खूब पढ़े और आईएएस अफसर बने। बिट्टो भी तो यही चाहती थी, इसलिए पढ़ना उसकी पहली प्राथमिकता था। ''मॉम, आई कैन नॉट डू एनी कंप्रोमाइजेज विद स्टडीज। आई वांट टू एचीव समथिंग बिग इन लाइफ।'' वह अकसर उनके गले से झूलते हुए कहती।

''बिट्टो, कभी हिंदी में भी बात कर लिया कर, हमेशा अंग्रेजी के घोड़े पर सवार रहती है'', नरेंद्र उसे छेड़ते।

''क्या करूँ, पापा, अब इतने हाई–फाई स्कूल में पढ़ती हूँ तो उसका असर दिखता रहना चाहिए,'' वह जोर से खिलखिलाती।

ऐसी ही थी उनकी बिट्टो, एकदम अलमस्त, जिंदगी को खुल कर जीने वाली। पढ़ाई और बाकी एक्टीविटीज में अव्वल रहने वाली बिट्टो जीवन की पेचिदगियों और लोगों के चेहरों के पीछे छिपे असली मुलम्मों को देखने में पिछड़ गई। लोग धोखा भी देते हैं, लोग आपकी भावनाओं के साथ खेल भी सकते हैं और प्यार का झूठा दावा भी कर सकते हैं, न वह समझ पाई और न ही वह जिन्होंने सदा उसे अपनी आँचल की सुरक्षित छाँव में छिपाए रखा था, उसे अपना लाड़–प्यार की पलकों में छिपाकर दुनिया

के दाँव-पेंचों को समझने नहीं दिया था।

तो क्या वही जिम्मेदार हैं बिट्टो के उनकी दुनिया से चले जाने की...

''मेमसाहब, चाय।'' सुबह की चादर पसर गई थी। नरेंद्र ने ही भिजवाई होगी उनके लिए चाय।

''ड्राइंगरूम में ही रखो, वहीं आ रही हूँ। साहब वहीं बैठे हैं न?''

वह हाँ में सिर हिलाता हुआ, वापस ट्रे लेकर चला गया।

''रात फिर नहीं सोई? कब तक जागती रहोगी? मुट्ठी में रेत दबी नहीं रह सकती, वह फिसलती ही रहती है। पाँच साल हो गए हैं बिट्टो को गए...अब तो आदत डाल लो उसके बिना जीने की।'' नरेंद्र की बात सुन, बड़ी हैरानी से उन्होंने उन्हें देखा...उसके बिना जीने की आदत---नहीं कर पा रही हैं वह ऐसा...जी रही हैं क्योंकि मौत को खुद से गले लगाने की हिम्मत नहीं है उनमें...वह बिट्टो की तरह साहसी नहीं हैं...

आत्महत्या करना क्या साहसी होने का प्रतीक होता है? हार मान जाओ और संघर्ष न कर सकने की हिम्मत अपने भीतर पैदा न कर सको और टूट कर आत्महत्या कर लो...यह तो कायरता हुई न...मेरी बिट्टो, तुम कायर क्यों निकलीं...मेरी सुरक्षा ने तुम्हें कभी जिंदगी की सच्चाइयों से रु-ब-रु होने ही नहीं दिया और एक बार में ही तुम टूट गई...बताया तक नहीं उन्हें...एक बार तो अपना दर्द बाँट लेती तुम...

रागिनी की आँखों से आँसू बहने लगे। नहीं जीना चाहतीं वह भी बिट्टो के बिना, एक बोझ के साथ कि उसकी मौत की जिम्मेदार शायद वही हैं।

सब कितना अच्छा चल रहा था...बिट्टो के दसवीं में ९8 पर्सेंट आए थे। वह बहुत खुश थी पर उसकी इस खुशी में कुछ और भी रंग मिले हुए हैं, यह उन्हें महसूस तो हुआ था पर जान नहीं पाई थीं। पता ही नहीं चला था उन्हें, उनकी लाडली को अपने ही क्लास के एक लड़के अनुराग से प्यार हो गया था। कोटे से एडमिशन हुआ था... ईडब्ल्यूसी का था। पैसे नहीं थे, पर एंबीशियस था और शायद शुरू से ही जान गया था कि अगर किसी अमीर लड़की से शादी कर ली जाए तो जिंदगी आराम से कट सकती है। बिट्टो का भोलापन उसे अपना सही टार्गेट लगा...बस दिन-रात उसके पीछे घूमने लगा वह, उसकी तारीफ करता, उसका हर काम करने को तत्पर रहता और पढ़ाई में जब वह उसका कंपीटीटर बन गया तो बिट्टो का ध्यान उस पर गया।

साधारण-से कर्मचारी का बेटा उसके समकक्ष बनने की कोशिश कर रहा है...खल गई थी यह बात बिट्टो को...बस इस तरह से वह उसे सबक सिखाने के चक्कर में, उसे अपने से आगे न निकलने देने की होड़ में उसके जाल में फँसती गई और उसके इतने नजदीक आ गई कि वह उसे प्यार ही कर बैठी। साँवलेपन की रंगत में मिला थोड़ा कालापन, बड़ी-बड़ी आँखें, दाएं गाल पर चोट का निशान और मोटी, लंबी नाक...बालों को हर बार नया स्टाइल देने की कोशिश में अपना गँवारपन दिखा देता। अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने के कारण फर्राटे की इंगलिश बोलता था और बिट्टो को हमेशा इम्प्रेस करने में लगा रहता। उसके पास शानो-शौकत तो थी नहीं दिखाने के लिए, इसलिए उसने अपने चेहरे पर बहुत सारे मुलम्मे चढ़ाए हुए थे। जो जब सही लगता, उसे पहन लेता।

यह बिट्टो की वह उम्र थी जब आकर्षण के रेशे जिस्म के जर्रे-जर्रे में लिपटे होते हैं। उसके जो बाकी दोस्त थे वे सब किसी न किसी बड़े घराने या बिजनेसमैनों के बच्चे थे और उसी की तरह एक शानदार जिंदगी जीते थे। उनमें कुछ अलग नहीं था...पर अनुराग अलग था...वह पैसों का रुआब नहीं दिखाता था...वह उस पर लिखी कविताएँ उसे सुनाता था, वह उसके रेशमी बालों और मुलायम गालों पर शायरी करता था...कैंटीन में बैठकर उसके साथ चैप्टर डिस्कस करता था और उसी के पैसे खर्च करवा जो चाहे खाता था। वे महँगी चीजें जिन्हें वह अफोर्ड नहीं कर सकता था। बिट्टो उसकी शायरी में सपने बुनने लगी, उसके साथ जीने के सपने देखने लगी।

कॉलेज में एडमिशन लेने में उसने कितना समय लगाया था। रागिनी जान ही नहीं पाई थीं कि आखिर वह इतने अच्छे कॉलेज में जाने में क्यों ना-नुकुर कर रही है, क्यों उसने बस से जाने की जिद पकड़ ली है...क्यों उसे सड़क पर खड़े होकर गोलगप्पे खाना अच्छा लगने लगा है...माँ होकर भी वह उसमें आए बदलाव को देख ही नहीं पाई थीं। बड़े कॉलेज में हारकर वह जाने को मान ही गई। अनुराग ने तय किया था कि वह पत्राचार से पढ़ाई करेगा, क्योंकि अब घर चलाने के लिए काम भी करना होगा। उसके सामने निरीह बन वह खड़ा हो जाता और नादान बिट्टो उसको यह कह ढेर सारे रुपए दे देती कि उसकी पढ़ाई पर किसी तरह भी असर नहीं पड़ना चाहिए। वह है न उसके साथ...हमेशा उसकी मदद करेगी।

अनुराग का नाटक चल रहा था, वह अपनी मानसिकता के दायरे में लपेटता जा रहा था बिट्टो को। जब चाहे उससे किसी न किसी बहाने पैसे ऐंठ लेता। प्यार में डूबी बिट्टो उसके प्रपंच को समझ सके, इतनी समझ उसमें थी नहीं, वह तो सबको अपने जैसा अच्छा मानती थी।

वह तो संयोग की बात है कि एक दिन उनकी मुलाकात बिट्टो की फ्रेंड मान्या से हो गई थी जो उसी के कॉलेज में थी पर उनके सब्जेक्ट अलग थे।

हँसते हुए बोली थी, ''लगता है आंटी, राइट टु एजुकेशन जैसा कोई अभियान चला रही है आपकी बिट्टो, क्या चक्कर है यह? उसे समझाइए अपनी पढ़ाई पर ध्यान दे न कि किसी गरीब तबके के लड़के को पढ़ाकर बड़ा आदमी के सपने को पाल कर खुद की लाइफ दाँव पर लगाए। एक दिन वह इसे ही अंगूठा दिखाकर चला जाएगा। सुना है बहुत ही तंगी भरा जीवन जीता है, और इससे पैसे ऐंठते रहता है। सोशल सर्विस तो नहीं लगती, कहीं प्यार में तो नहीं पड़ गई है वह उसके। हमेशा उसी के बारे में बातें करती है। पहले ऐसी तो नहीं थी वह। बचपन से जानती हूँ उसे। अनुराग संभ्रांत परिवार का नहीं है, न ही अच्छे संस्कार वाला है। मेरे भाई ने तो अकसर उसे पान की दुकानों पर सिगरेट पीते देखा है। कहीं किराए पर दो कमरों के फ्लैट में रहता है, किसी बस्ती में शायद।''

सकते में आ गई थीं रागिनी उसकी बात सुनकर। इन दिनों वह उनसे पैसे तो बहुत लेने लगी थी। कार से कॉलेज जाने को मना कर दिया था और कुछ खोई-खोई भी रहने लगी थी।

हिम्मत कर बात की उन्होंने, ''यह अनुराग कौन है और तुम्हारा उससे कोई रिश्ता है क्या?''

बिना सकपकाए बोली थी बिट्टो, ''येस आई लव हिम मॉम। आई नो, ही बिलोंग्स टू ए पुअर फैमिली, पर उससे क्या, देख लेना एक दिन वह कामयाब इंसान बन जाएगा। आई एम हेल्पिंग हिम ओनली। बुरा क्या है इसमें?''

''बात बुराई कि नहीं है बेटा...संबंध बराबर वालों के साथ ही बनाए जाते हैं। उसका लाइफस्टाइल तुम्हारे लायक नहीं है, वह चाहे जितना भी बड़ा आदमी बन जाए, पर सोच की बेड़ियां बहुत मजबूत होती हैं, तोड़ी नहीं जा सकतीं। एक फर्क हमेशा बना रहता है।''

नरेंद्र तो यह जानकर आगबबूला हो गए थे। ''दिमाग खराब हो गया है इसका, पुअर सेक्शन वाले के साथ जिंदगी गुजारने की सोच रही है बेवकूफ लड़की...कोटे से बड़े स्कूलों में एडमिशन लेने वाले बहुत से लड़कों को बखूबी जानता हूँ। अमीरों की लड़कियों से शादी करना इनका सबसे बड़ा ख्वाब होता है। कोई जरूरत नहीं है कॉलेज जाने या उससे मिलने की...राइट टु एजुकेशन ने न सिर्फ शिक्षा प्रणाली को लचर कर दिया है बल्कि कई जिंदगियों को भी खराब किया है। बहुत केस देखे हैं मैंने ऐसे...''

उनकी मासूम बिट्टो पर तो जैसे अनुराग का भूत सवार था.. .किसी की नहीं सुनी। घर छोड़कर ही चली गई थी। पुलिस कंप्लेन का भी फायदा नहीं हुआ। बालिग जो थी वह...अपनी मर्जी से गई थी। शादी करना चाहती थी अनुराग से ताकि उसे समाज में सम्मान दिला सके...

तीन दिन बाद वह लौटी थी...रेशमी बालों पर धूल जमा थी, मुलायम गाल पर आँसुओं के निशान थे...थकी-टूटी, निराश...

गोद में आकर लेट गई थी उनकी...''मॉम, ही इज ए चीटर, प्यार नहीं करता मुझसे...बोला पहले अपने माँ-बाप से बोलो कि सारी प्रॉपर्टी तुम्हारे नाम कर दें और फिर तुम उसे मेरे नाम ट्रांसफर करोगी, तभी तुमसे शादी करूँगा। ही ओनली वांट्स मनी पापा, नॉट मी...पर मैंने तो उससे सच में प्यार किया है। ही मिस्बेहिव्ड विद मी, लाइक सम इलिट्रेट।'' रोती रही वह फूट-फूट कर। वह लौट आई थी, उसे अपनी भूल का एहसास हो गया था, उनके लिए यही बहुत था। घाव धीरे-धीरे भर जाएगा और जिंदगी वापस ढर्रे पर लौट आएगी, यही सोचा था रागिनी और नरेंद्र ने। कस कर उसे उन्होंने फिर से अपने आँचल की सुरक्षित छाँव में समेट लिया था।

पर ऐसा नहीं हुआ।

नहीं बर्दाश्त कर पाई थी उनकी बिट्टो इस धोखे को... किसी की मदद करना...किसी को चाहना...अपराध कैसे हो सकता है...बस यही कहती रहती।

उस सुबह जब सर्दियों की गुनगुनाहट दस्तक दे रही थी, बिट्टो का बेजान शरीर पंखे से लटका हुआ था। उसके कमरे में बड़े शान से सजे स्कूल और कॉलेज में मिले मैडल जाने किस का मजाक उड़ा रहे थे।

♦♦♦

होटल में छापा

अरविंद तिवारी

पुलिस को ऐसे मौके कभी-कभार ही मिलते हैं, जब वह बड़े पैमाने पर सर्च ऑपरेशन चलाती है। इस 'सर्च' अभियान के दौरान पुलिस कई प्रकार की 'रिसर्च' भी करती है। रिसर्च में कई ऐसी मुर्गियाँ फँस जाती हैं, जो पुलिस वालों के घर जाकर अंडे देने लगती हैं। विदेशी जासूस मिले या न मिले, देशी दारू और अपराधी उसे जरूर मिलेंगे, यही सोचकर वह सघन तलाशी अभियान चलाती है।

सम्पर्क: रोडवेज वर्कशाप के पीछे, मेहरा कॉलोनी शिकोहाबाद-283135, जनपद-फिरोजाबाद, (उत्तर प्रदेश)

रात के दो बजे 'होटल लेह' में पुलिस की रेड पड़ी। उस रात होटल का मालिक रतन सेठ होटल में ही था, न भी होता, तो दस मिनट के भीतर आ जाता। उसके अपने कर्मचारियों पर पूरा भरोसा था, वे रतन सेठ का फोन नम्बर और पता तुरन्त बता देते। कई बार छोटी-मोटी गड़बड़ी पर ही बता देते, पर पुलिस की रेड छोटी-मोटी गड़बड़ी नहीं थी, बल्कि रिक्टर पैमाने पर सात अंक वाला भूकंप था। रतन सेठ की अनुपस्थिति में होटल के कर्मचारी यह भी बता देते कि इस होटल के साथ जयपुर के सभी होटलों में, जो गड़बड़ियाँ होती हैं, सबके लिए रतन सेठ ही जिम्मेदार हैं। ऐसे स्वामिभक्त कर्मचारियों को रतन सेठ नौकरी पर रखे हुए था, तो उसके पीछे 'निंदक नियरे राखिए' वाली पंक्ति ही थी, जिसे मध्यकाल से लेकर आज तक साहित्यकारों के साथ सियासतदां भी कोट करते आए हैं। रतन सेठ ने कर्मचारियों की नई भर्ती करके भी आजमा लिया, पर हर नया कर्मचारी पुराने वाले से ज्यादा शातिर और चूना लगाने वाला निकला था पर आज कर्मचारियों को कोई टेंशन नहीं है। पुलिस रतन सेठ को ले जाकर हवालात में बंद कर दे तो कर्मचारियों को कुछ दिनों तक टेंशन से राहत मिल सकती है। नौकरी सुरक्षित रखते हुए, ये कर्मचारी यथासंभव अपने मालिक के खिलाफ सबूत भी दे सकते हैं।

पुलिस को 'इनपुट' मिला था कि जयपुर के किसी होटल में विदेशी जासूस रुका हुआ है। विदेशी जासूस का मतलब पाकिस्तानी जासूस होता है, यह तथ्य भारतीय पुलिस के साथ भारतीय जनता भी जानती है। पुलिस को अगर 'इनपुट' मिल जाये तो वह 'आउटपुट' के लिए इतनी व्याकुल हो जाती है कि उसकी व्याकुलता के बरक्स आम जनता इमरजेन्सी टाइप के अनुभव से गुजरने लगती है। पुलिस इतनी मुस्तैद होती है कि विदेशी जासूस, जासूसी छोड़कर व्यंग्य लिखने की सोचने लगता है। पुलिस आमतौर पर इनपुट मिलने के बाद सीधे-सीधे जयपुर के होटलों की तलाशी नहीं लेती, बल्कि पहले जयपुर के आस-पास

बसे कस्बों और शहरों के होटलों में छानबीन करती है। पुलिस थ्रू प्रापर चैनल ही चलती है, जबकि न्यूज चैनल हमेशा उसकी कार्यप्रणाली में खामियां ढूंढ़ते हैं। आस-पास की तलाशी लेती पुलिस जयपुर में तलाशी शुरू करती है। पुलिस इसमें किसी तरह की कोताही नहीं बरतती, फिर भले ही जयपुर में छुपा जासूस भाग ही क्यों न जाये।

पुलिस को ऐसे मौके कभी-कभार ही मिलते हैं, जब वह बड़े पैमाने पर सर्च ऑपरेशन चलाती है। इस 'सर्च' अभियान के दौरान पुलिस कई प्रकार की 'रिसर्च' भी करती है। रिसर्च में कई ऐसी मुर्गियाँ फँस जाती हैं, जो पुलिस वालों के घर जाकर अंडे देने लगती हैं। विदेशी जासूस मिले या न मिले, देशी दारू और अपराधी उसे जरूर मिलेंगे, यही सोचकर वह सघन तलाशी अभियान चलाती है। उसका अभियान संपूर्ण स्वच्छता अभियान की तरह होता है, जिसकी 'जद' में जो भी आता है, कूड़े-कचरे की तरह थाने में उठ आता है। वैसे भी विदेशी जासूस और भारतीय पुलिस के बीच हमेशा से लुका-छिपी चलती रहती है, जिसमें विदेशी जासूस को छुप जाने का पूरा मौका मिलता है। एस.टी.एफ. की बात अलग है, जो पुलिस के असफल होने पर विदेशी जासूस को पकड़ लेती है वरना सामान्य पुलिस के कब्जे में होटल का वह रजिस्टर ही आता है जिसमें विदेशी जासूस ने अपना फर्जी पता लिखवाया था। पुलिस अगर एस.टी.एफ में नहीं है तो बीसियों तरह के कार्य करने होते हैं। नकलविहीन परीक्षा से लेकर ओवर लोड ट्रकों की निगरानी तक उसे करनी होती है। यही कारण है वह विदेशी जासूस की तलाश भी उसकी स्टाइल में करती है, जिसमें वह बिना हेलमेट पहने दोपहिया वाहन के चालक का चालान करती है।

तलाशी अभियान में यदि पुलिस के हाथ देशी अपराधी न आए, तो पुलिस के नाम पर बट्टा लग जाता है। अतः वह तलाशी अभियान पर पूरी तैयारी के साथ निकलती है। चरस की एक दर्जन पुड़ियां और देशी तमंचे उसके साथ होते हैं, ताकि किसी भी भले आदमी को 'प्रमोट' करके अपराधी बनाया जा सके। मीडिया के सामने तब यह कहा जा सकता है कि विदेशी जासूस भले ही भाग गया हो, हमने देशी अपराधी तो धर लिए। एक बार तो वह अच्छे-भले आदमी को विदेशी जासूस बताकर लॉकअप में बन्द कर देती है। ठीक-ठाक डील हो जाए तो ठीक है, वरना कह देगी हमने तो शक के आधार पर बन्द किया था।

शक के आधार पर इस देश में कुछ भी हो सकता है। शक के आधार पर डॉक्टर जुकाम वाले मरीज के पूरे शरीर का डॉयग्नोसिस करवा देता है। मरीज भी जानता है कि कुछ नहीं निकलने वाला, पर पैथॉलाजी से डॉक्टर का अच्छा खासा कमीशन निकल आता है। शक के आधार पर हमारे देश की खाप पंचायतें युवक-युवतियों को देश निकाला से लेकर 'संसार निकाला' तक की सजा सुना देती हैं। शक के आधार पर इस देश की जनता चालबाज नेता को जिता देती है। उसे शक रहता है यह नेता उसके क्षेत्र की तरक्की करवाएगा।

'होटल लेह' में घुसते ही पुलिस का सामना उसके मालिक रतन सेठ से हुआ। रतन सेठ देखने में विदेशी जासूस ही लगता था, ऊपर से उसका भयाक्रान्त चेहरा, उसके जासूस होने की चुगली खा रहा था। पुलिस को उम्मीद नहीं थी कि सफलता इस कदर तश्तरी में रखकर उसके सामने पेश कर दी जएगी। पुलिस यह मानने को तैयार ही नहीं थी कि रतन सेठ इस होटल का मालिक है। होटल का मालिकाना हक साबित करने वाले कुछ प्रमाणपत्र रतन सेठ ने दिखाये, जिनमें बतौर होटल मालिक रतन सेठ का नाम लिखा था। कागजों का फोटो पुराना हो गया था, जो रतन सेठ के वर्तमान चेहरे से मेल नहीं खाता था। कुछ फोटो राजस्थान सरकार के किसी मंत्री के साथ थें। पुलिस के लिए ये बेकार थे, क्योंकि इन दिनों सियासी नेताओं के साथ आपराधिक प्रवृत्ति के लोग भी फोटो खिंचवा लेते हैं।

उस रात होटल मैनेजर के रूप में बद्री चौधरी काम कर रहा था। आज रात दो कस्टमरों के साथ दाखूड़ी ब्यूटीपार्लर से लौटकर सीधी उसी कमरे में चली गई थी। होटल में झाड़ू पोंछा लगाने के बाद नहाने से काम नहीं चलता। ब्यूटी पार्लर से लौटी दाखूड़ी और सफाई कर्मी दाखूड़ी में जमीन-आसमान का फर्क था।

बद्री चौधरी चाहता था कि उसकी पोल खुले, उससे पहले पुलिस जासूस मानकर रतन सेठ को अपने साथ ले जाए। रतन सेठ को

यदि हार्ट अटैक या टांग टूटने में से किसी एक रोग के चयन का विकल्प हो, तो ब्रदी चौधरी, रतन सेठ की टांग तोड़ना पसंद करेगा। कम से कम रतन सेठ की जान तो नहीं जायेगी। दाखूड़ी का कस्टमर्स के साथ पकड़ा जाना हार्ट अटैक ही तो है। रतन सेठ के चमचे कर्मचारी बतौर गवाह, बयान दे रहे थे कि रतन सेठ ही इस होटल का मालिक है। बद्री चौधरी की इच्छा हो रही थी कि वह पुलिस से कह दे, यही है विदेशी जासूस, जो नाम बदलकर रतन सेठ हो गया है। बाद में जमानत तो होनी ही होनी है। यदि दाखूड़ी ने बद्री चौधरी का नाम ले दिया, तो उसकी जमानत के लाले पड़ जायेंगे।

रतन सेठ गिरफ्तार तो नहीं हुआ लेकिन होटल की तलाशी में पुलिस ने उसे अपने साथ ऐसे रखा, जैसे किसी चोर को साथ रखकर चोरी का माल बरामद करवाया जा रहा हो। तलाशी अभियान के दौरान उस ट्रिपल बैड कमरे को भी खुलवाया गया, जिसमें अधेड़ उम्र के दो कस्टमर ब्यूटी-पार्लर के कमाल से मंत्रमुग्ध हो गये थे। संतोषजनक तथ्य यह था कि पुलिस को ये तीनों निर्वस्त्र नहीं मिले।

पुलिस ने तीनों का आपसी रिश्ता पूछा। जब किसी ने जवाब नहीं दिया तो पुलिस को अपनी ओर से पहल करनी पड़ी। ऐसे मामलों में पुलिस की पहल देखने लायक होती है। पुलिस ने अधेड़ पुरुषों से पूछा ''या काई थारी भैण लागे।'' एक बार तो दोनों अधेड़ों का चेहरा निस्तेज हो गया, लेकिन तुरंत संभलते हुए एक अधेड़ बोला ''भैण कोनी, भाभी छे।''

मामला संगीन था, अतः सभी पुलिसवाले उसी कमरे में आ धमके, जिसमें दाखूड़ी पकड़ी गई थी। पुलिस की रेड सफल हो गई थी। रही बात विदेशी जासूस की, तो वह भारतीय पुलिस से बचकर कहाँ जायेगा। अब तक सभी हवाई अड्डों पर रेड अलर्ट हो गया होगा। पूरे जयपुर की पुलिस उसे तलाश कर रही है। उसकी तलाशी का सारा भार 'होटल लेह' में पहुँचे पुलिस कर्मियों पर ही थोड़े ही है। आखिर बाकी पुलिस भी तो सैलरी लेती है। यही सोचकर सभी पुलिसवाले ट्रिपल बेड वाले डीलक्स कमरे में घुस आए। दो सिपाही, जो होटल के मुख्य गेट पर खड़े थे, घटना से अनजान थे। कमरे में मौजूद नफरी भी नहीं चाहती थी कि रिश्वत की रकम में से उन दोनों को हिस्सा दिया जाय।

थानेदार लंगोट का पक्का था, अतः उसने रिश्वत के रूप में रुपयों की मांग की, दाखूड़ी की ब्यूटी पर उसका ध्यान नहीं गया। उसकी ऐसी सोच के बरक्स जयपुर के उस नामी ब्यूटी पार्लर पर प्रश्नचिन्ह लगा गया, जहाँ दाखूड़ी मेकअप के लिए जाती है। थानेदार ने सिपाहियों से कहा कि वे पूरे होटल की तलाशी लें, इस कमरे में जो 'डील' होगी उसका हिस्सा हस्बेमामूल सभी को मिल जायेगा। थानेदार ने अपनी पुलिस टुकड़ी को आगाह किया, आप लोग जिस नजर से दाखूड़ी को देख रहे हो, उस नजर से मत देखो। दाखूड़ी को नजर लग गई तो इल्जाम पुलिस पर लग जायेगा। उधर इस मसले पर न्यूज चैनल वाले अपनी अदालत अलग खोल बैठेंगे।

मन मसोस कर सिपाही होटल की तलाशी में जुट गए, लेकिन एक कमरे की तलाशी के बाद वे फिर से दाखूड़ी के कमरे में झांकने लगते, यह देखने के लिए कि फिल्म में कौन सा सीन चल रहा है। किसी पिक्चर हॉल के गेट कीपर से सिपाहियों को इस तरह की प्रेरणा मिली थी। इस ताका-झांकी के पीछे थानेदार के चरित्र का मूल्यांकन करने का लक्ष्य भी था।

कमरा नं. तीन सौ एक में किसी जिले के एक अधिकारी ठहरे हुए थे। उन्हें रात को एक घंटे भी नींद नहीं आई थी। 'टोकनमनी' ने उनका चैन छीन लिया था। उन्हें अपने जिले के कार्यालयों हेतु पाँच फोटो स्टेट मशीनें खरीदनी थीं। सभी कोटेशन जयपुर की फर्मो के थे, इसलिए रात को एक फर्मवाला जबरदस्ती टोकन मनी पटक गया था, टेबल पर। अधिकारी घबराकर बाहर आ गए, यह देखने कि 'कहीं एन्टी करप्शन' टीम तो बाहर नहीं खड़ी है। तैनाती वाले जिले में उसके दुश्मनों की संख्या बहुत ज्यादा थी। उसे शक था कि ये दुश्मन उसे ट्रैप करवा देंगे। उसने होटल की, तीसरी मंजिल से झांककर देखा, कहीं पुलिस तो नहीं खड़ी है। उसकी शंका निर्मूल थी, लेकिन वह आशंकाओं से इस कदर घिर युका था कि उसका ब्लड प्रेशर बढ़ गया। फर्मवालों ने धमकी के स्वर में बताया कि उनकी फर्म के कोटेशन सबसे कम हैं। कायदे से उन्हें ही आर्डर मिलेगा, इसलिए वे कायदे से टोकनमनी देने आए हैं। भुगतान होने पर पूरा कमीशन मिल जायेगा। अधिकारी

ने क्रय समिति में डी.एम. के हस्तक्षेप की बात करते हुए कहा था, आप अपनी टोकनमनी ले जायें। टोकनमनी देने के बाद भी आपको आर्डर मिलेगा, इसकी कोई गारंटी नहीं है। फर्मवालों को अधिकारी से ज्यादा अपने रुपयों पर भरोसा था। ये तीस हजार रुपये आर्डर की कॉपी भिजवाकर ही रहेंगे। टोकनमनी में दिया हुआ पैसा आज तक बेकार नहीं गया। फॅर्म वाले डकैतों की तरह दनदनाते हुए, जैसे आए थे, वैसे ही लौट गए।

अधिकारी ने टोकनमनी रुपयों को हाथ नहीं लगाया। रुपयों की तरफ वह ऐसे देख रहा था, जैसे कोई अपने घर में निकल आए काले सांप को देखता है।

जिस समय तलाशी लेने वाले सिपाहियों ने उसके कमरे का गेट खुलवाया उस समय भी रुपये मेज पर पड़े हुए थे। अधिकारी ने उन्हें किसी कपड़े से ढंकने की भी जहमत नहीं उठाई। सिपाहियों ने कमरे में घुसते ही रुपयों को देखा। देखने के बाद उन्हें कमरे में अन्य कोई चीज दिखाई नहीं दी, यहाँ तक कि कमरे में रुका हुआ अधिकारी की आशंका निर्मूल नहीं थी कि विरोधी उसे ट्रेप करवाने में सफल रहे। अधिकारी को संतोष इस बात का था कि उसने इन रुपयों को छुआ तक नहीं।

''ये रुपये मेरे हैं, आपने अपनी जेब में क्यों डाल लिए।'' अधिकारी ने हिम्मत जुटाकर पूछा।

''भाया। नागी लुगाई ने देख कुण को मन कोनी चालै।'' पुलिस की तरह से शालीन भाषा में जवाब दिया गया।

अधिकारी बोला ''ये रुपये मेरे एक रिश्तेदार को उधार देने हैं। मैं अपने घर से लाया हूँ।''

एक सिपाही बोला ''टेबल पर जिस दादागीरी से आपने इन्हें रखा है, उससे साबित होता है कि ये रुपये नम्बर दो का धंधा करने वालों के हैं।''

'नम्बर दो' का उच्चारण सुनते ही अधिकारी घबरा गया। आगे ज्यादा बहस करने पर पुलिस भेद खोल सकती है। रिश्वत की टोकनमनी नम्बर दो का ही तो धंधा है।

पुलिस का दूसरा सिपाही बोला ''देख भाया'' खुले में शौच जाने और खुले में रुपये रखने पर जुर्माना तो भरना ही पड़ता है। इसलिए अब ये रुपये तुम्हें तभी मिलेंगे, जब इनके नम्बर एक के होने का प्रमाण पत्र दोगे। इसके लिए बैंक से लिखवाना होगा, जहाँ से आपने रुपये निकाले थे। यदि घर से लाए हो तो पत्नी की गवाही चाहिए।

अधिकारी चुप रहा, सिपाही रुपये लेकर चलते बने। बरामदे में जाकर सिपाही रुपयों के बंटवारे के बारे में विचार करने लगे। तय हुआ, इस घटना को थानेदार से छुपाया जायेगा। यदि कस्टमर थाने में रिपोर्ट दर्ज करवाता है, तो बाद में रणनीति तय की जायेगी। कस्टमर के दब्बू स्वभाव को देखते हुए रपट लिखवाने की संभावना न के बराबर है।

कमरा नम्बर 'तीन सौ दस' की अलग कहानी थी। इस कमरे में एक ऐसा डॉक्टर ठहरा था, जो दारू छुड़ाने का दावा करता था। उसका दारू छुड़ाने का ढंग अनूठा था। वह पियक्कड़ के साथ ही दारू पीता था और पियक्क्ड़ से कहता था अगर भविष्य में तुमने दारू पी तो परिवार सहित तुम नष्ट हो जाओगे। दारू पीने पिलाने के साथ ही तंत्र-मंत्र की भी क्रिया चलती रहती थी।

पुलिस ने जब उसका दरवाजा खुलवाया, दारू की गंध ने सिपाहियों को पागल कर दिया। कमरे में दारू का बड़ा जखीरा पकड़ा गया, क्योंकि डॉक्टर साहब दारू छुड़ाने के साथ ही शराब की तस्करी भी करते थे। सिपाहियों ने जब पैग चढ़ाए, तो उनकी थकान दूर हो गई। थकान दूर होते ही पुलिस ने डॉक्टर साहब से दस हजार रुपए झटक लिए और बरामद शराब सुरक्षित रखवा दी।

तलाशी के बाद पुलिस ने रतन सेठ से एक लाख रुपयों की माँग की, ताकि उसे विदेशी जासूस से पुनः 'होटल लेह' का मालिक बना दिया जाय। रतन सेठ ने घर से रुपए मंगवाकर पुलिस से मुक्ति पाई।

पुलिस के जाने के बाद रतन सेठ सन्निपात की अवस्था में थे। पुलिस लहरों को गिनने वाले काम में भी अच्छी खासी कमाई करके जा चुकी थी। आयुर्वेद कहता है कि जब वात, पित्त और कफ—तीनों उग्र हो जाते हैं तो सन्निपात हो जाता है।

सुबह हो चुकी थी अतः ब्यूटीपार्लर से प्राप्त ब्यूटी की परवाह किए बिना दाखूड़ी झाड़ू लेकर होटलों की सफाई करने लगी।

♦♦♦

तीन लघु कथाएँ

किशनलाल शर्मा

पीर पराई

उसने घड़ी में समय देखा। बारह बजे थे। झब्बू की तबियत सुबह से खराब थी। वह उसकी देखभाल में लगा था। कैमिस्ट से दवा लाकर भी खिला चुका था। लेकिन झब्बू की तबियत में कोई सुधार नजर नहीं आ रहा था। झब्बू की हालत देखकर वह समझ गया, बिना डॉक्टर को दिखाये काम नहीं चलेगा। झब्बू को उसने पशु चिकित्सालय ले जाने के लिए कार निकाली।

अस्पताल उसके घर से 20 किलोमीटर दूर था। अस्पताल बंद होने में सिर्फ आधा घंटा रह गया था। अस्पताल बंद होने से पहले वह वहाँ पहुँच जाना चाहता था। इसलिये कार तेजी से चला रहा था। अचानक सड़क पार करता कुत्ता उसकी कार के नीचे आ गया।

''पीं... पीं...'' उसे कुत्ते की चीख सुनाई पड़ी थी। लेकिन न उसने कार रोकी, न पीछे मुड़कर देखा... देखता भी क्यों उसे अपने कुत्ते को लेकर अस्पताल पहुँचने की जल्दी जो थी।

रेप सीन

''बचाओ...'' लड़की की चीख सुनकर आस पड़ोस के लोग दौड़े चले गये। ''क्या हुआ''?

''कुछ नहीं''। मैंने नाटक में भाग लिया है। उसमें रेप का सीन है। उसी की रिहर्सल कर रही हूँ।'' उसका जवाब सुनकर लोग वापस चले आये। उसकी चीख सुनकर लोग दौड़ कर जाते रहे और रोज एक जवाब सुनकर वापिस आ जाते। कुछ दिनों बाद लोगों ने उसकी चीख सुनकर जाना बंद कर दिया।

एक दिन सचमुच उसके साथ रेप हो गया। वह चीखी चिल्लाई लेकिन जिस तरह सचमुच भेड़िया आने पर भी गडरिये की पुकार को लोगों ने अनसुना कर दिया था। वैसा ही उसके साथ हुआ था।

अपना अपना विश्वास

''पिताजी का श्राद्ध है। मुझे दुकान पर पहुँचने में थोड़ा समय लगेगा।'' कम्प्यूटर वाला मुझसे बोला था।

''श्राद्ध''? उसकी बात सुनकर मैं आश्चर्य से बोला, ''तुम्हें श्राद्ध से क्या लेना देना? तुम तो कम्युनिस्ट हो।''

''आप सही कह रहे हैं। मैं कम्युनिस्ट हूँ और इन आडंबरों में विश्वास नहीं करता'', वह बोला, ''लेकिन मेरी पत्नी इनमें विश्वास रखती है और मैं अपनी पत्नी में।''

♦♦♦

सम्पर्क: 103, रामस्वरूप कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-282010,
मो: 9458740196, 8868829917

दुर्गा पूजा

डॉ. शोभा अग्रवाल 'चिलबिल'

दुर्गा पूजन का दिन था। घर के अन्दर व बाहर दीपक जल रहे थे, उत्सव का वातावरण था, घर में श्रीदुर्गा जी का पूजन प्रारम्भ होने वाला था। तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया—कौन?

'मैं हूँ, खोलिए।'—स्त्री स्वर उभरा।

देखा, एक चौबीस-पच्चीस वर्ष की स्त्री, अपने साथ दो छोटे बच्चे लिए खड़ी थी, जिनकी आयु लगभग तीन-चार वर्ष की होगी।

स्त्री—'मैं पास के मोहल्ले प्रेम नगर में ही किराये के मकान में अपने पति के साथ रहती हूँ, मेरा पति मजदूरी करता है, उसने मुझे मारपीट कर घर से निकाल दिया, किसी ने सहारा नहीं दिया, मुझे कहीं शरण चाहिए, बच्चे भी भूखे-प्यासे हैं।'

मैंने उसे वहीं दरवाजे के बाहर बैठा दिया, खुद भी वहीं घर की सीढ़ी पर बैठ गया।

पत्नी को आवाज दी—'बाहर एक बहन और दो बच्चे हैं, इनके लिए कुछ खाना और पानी ले आओ।'

पत्नी कुछ खाने का सामान और पानी लेकर बाहर आई और कुछ पूछने से पहले ही मैंने इशारे से चुप कर दिया।

थोड़ी देर बाद पत्नी ने आकर कहा—'अन्दर चलिए, दुर्गा पूजन का समय हो रहा है, पूजा कर लीजिए।'

'जाओ तुम लोग पूजन कर लो। मैंने पुलिस को बुलाया है ताकि इसे संरक्षणगृह में भेज सकूँ। मुझे देर लगेगी।'

पत्नी अन्दर चली गई कुछ देर में स्थानीय थाने से सम्बन्धित पुलिस, महिला पुलिस के साथ आई। वस्तुस्थिति को समझने के बाद पुलिस उस महिला व उसके बच्चों को गाड़ी में बैठाने लगी। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि वह उसे हरिनगर में स्थित सरकारी महिला-सरंक्षणगृह में भेज देंगे।

मुझे संतोष हुआ, मैंने उस महिला को कुछ रुपये देकर विदा किया। जब घर के अन्दर आया तो दुर्गा पूजन का कार्यक्रम सम्पन्न हो चुका था।

पत्नी ने कहा—'दुर्गा पूजन तो हो चुका, लेकिन आप भी दुर्गा पूजन कर लीजिए।'

मैंने कहा—'दुर्गा पूजन तो कर चुका। दुर्गाजी ही तो परीक्षा ले रही थीं कि मानवरूप में मेरी मूर्तियों से भी प्रेम करते हो कि नहीं।'

...पत्नी ने गर्व से पति को देखा और फिर आशीर्वाद देती दुर्गा माँ के चित्र को, उसे माँ बेहद संतुष्ट और प्रसन्न प्रतीत हुई।

♦♦♦

सम्पर्क: आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेंद्र नगर, नई दिल्ली-110060, मो. 09654135918, ई.मेल: chilbil.shubh@gmail.com

सुनील गज्जाणी की दो लघु कथाएँ

नींव को बिसरा कंगूरे की गाओ

''पहले बंद करो अपने ये हाय-हाय मुर्दाबाद के नारे। अगर तुम सब कुछ शांति रखो मैं कुछ बोलूं। व्यक्ति गुस्से में चिल्लाता बोला।

''लो हो गए हम चुप, अब फरमाइए।'' महिला ने अपने हुजूम को शांत रहने का इशारा कर जवाब में कहा।

''अरे, मैं समझ सकता हूँ आप सबके आक्रोश को। मगर मैं क्या करूँ, मैं तो बस अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ यहाँ का कर्मचारी होने के नाते। अच्छा, एक बात बताओ तुम्हारे इन मटको के यहाँ फोड़ने से क्या तुम्हारे गाँव के सूखे पड़े होद, तालाब में पानी भर जाएगा? या अंदर जो खेल मैदान में मैच की तैयारी के लिए पिछले कुछ दिनों से लगातार पानी का छिड़काव हो रहा है क्या इसे मैदान प्रशासन या जिला प्रशासन बंद कर देगा? जो मुझे नहीं लगता।।''

'अगर वे हमारे पानी की समस्या को हल्के में लेंगे तो हमारा विरोध हमारा आक्रोश भी बंद नहीं होगा, समझ लीजिए।''

''तेवर अच्छे हैं।''

''नहीं ये पीड़ा है, सुनिए साहब, हम औरतों को ही पता है पानी की एक-एक बून्द का महत्व। इस आग उगलती गर्मी में हम कस्तूरी मृग-सी हो जाती हैं जब हमारे आस-पास के जल स्रोत सूखने लग जाते हैं।''

''बहन जी, मैं। समझ सकता हूँ आपकी मनोदशा को।''

''साहब, समझने और भोगने में बहुत अंतर होता है। जो रोज हम भोग रही हैं। हम अपने सिर पर पानी का घड़ा कोसो-कोस पैदल चल कर लाती हैं, अगर आप समझते तो पानी की यूँ बर्बादी भी नहीं करने देते यहाँ।''

''अरे, यहाँ की बात फिलहाल अलग है, शायद तुम्हें पता नहीं होगा कि इस प्रकार के मैचों से हमारे शहर का और अधिक विकास, उन्नति होगी।''

''विकास। अरे जहाँ आज भी इस भीषण गर्मी में पानी के अभाव में लोग तड़फ-तड़फ कर प्यासे मर जाते हैं, जहाँ पानी के लिए आज भी भीख माँगती पड़ती है, वहां ऐसा विकास? पहले भीख माँगने की परम्परा तो मिटाइए।''

''बहन जी, आपकी बात शत-प्रतिशत सही है। मगर मेरे सामने ये बाते करने से क्या होगा। देखिए, दो बात आप कहेंगी फिर मैं कहूँगा, फिर ये बहस तकरार में बदल जाएगी। मैं आपके दर्द को अच्छी तरह समझता हूँ इसलिए इतनी सहायता तो कर सकता हूँ कि अगर आप सब चाहो तो अपने लिए यहाँ से जरूरत मंद भर पानी ले जाने की अनुमति दे सकता हूँ।''

''अरे ओ साब जी, हम यहाँ अपना विरोध जताने आये हैं, हमें भीख नहीं हक चाहिए। और हाँ, हमें पानी की रिश्वत देकर और भ्रष्टाचार फैलाने की कोशिश मत कीजिए।'' तैश में आकर उसने जवाब दिया।

''अरे, मेरा मतलब ये नहीं था आप गलत मतलब निकाल रही हैं।'' अधिकारी सकपकाया सा बोला।

''माफ कीजिये साब, अपने आक्रोश में मैंने ज्यादा ही कह दिया

सम्पर्क: प्रेसीडेंट बुनियाद साहित्य और काला संस्थान बीकानेर, सुथारों की बारी गुवाड, बीकानेर (राजस्थान), मो. : 09950215557 E-mail: aakharkalash.blogspot.com

आपको। क्या करें, हमारी समस्या एक-दो दिन से नहीं हमेशा से रही है। मेरी समझ में तो हमारा विकास तभी होगा जब पानी की समस्या से जूझने की विरासत को अपनी अगली पीढ़ी को हमें नहीं सौंपना पड़े।''

''ओह, इतनी समस्या है तुम्हारे गाँव में पानी की?''

''मेरे गाँव की स्थिति यूँ बयां कर सकती हूँ कि बिवाइयाँ सी पड़े सूखे खेतों में लू माना उनका दर्द और बढ़ाती रहती है। बूढ़े कुँएं तो लगे मानो अपनी उम्र जी चुके हो।

''उफ। बहुत दु:खद।'' कह संवेदना व्यक्त कर रहा होता है तभी अधिकारी का मोबाइल घनघनाता है।

''हाँ, ठेकेदार जी। अरे आज दो नहीं तीन टेंकर और जल्दी भेजो, मैं मैदान को शानदार घास युक्त बनाने के लिए किसी भी प्रकार से पानी की कंजूसी नहीं चाहता।'' सख्त लहजे में मोबाइल पे बोला।

''अभी जो आपने संवदेना व्यक्त की फिर वो क्या थी?'' ये सुन उसने हैरत में सवाल किया।

''देखिये, होने वाले इतने बड़े क्रिकेट मैच में अगर मैदान के प्रबंधन में कुछ भी कमी मिली तो मेरा प्रमोशन तो दूर की बात, शाबाशी तक नहीं मिलेगी और जान लें कि संवेदनाओं से कभी ड्यूटी नहीं की जाती।''

इच्छा

पति मुस्कुराता हुआ अपने मोबाइल पर फटाफट उंगलियाँ दौड़ा रहा था। उसकी पत्नी बहुत देर से उसके पास बैठी खामोशी से देख रही थी, जो उसकी रोज की आदत थी और जब भी कोई बात अपने पति से करती तो जवाब ''हाँ'' ''हूँ'' में ही होता या नपेतुले शब्दों में।

''किससे चैटिंग कर हो?''

''फेसबुक फ्रेंड से।''

''मिले हो कभी अपने इस फ्रेंड से?''

''नहीं।''

''फिर भी इतने मुस्कुराते हुए चैटिंग करते हो?''

''और क्या करूँ, बताओ?''

''कुछ नहीं, फेसबुक पे आपकी महिला मित्र भी बहुत-सी होगी ना?''

''हूँ।''

उँगलियों को हल्का-सा विराम दे मुस्कुराते हुए पति ने हुंकार भरी।

''उनसे भी यूहीं मुस्कुराते हुए चैटिंग करते हो, क्या आप सभी को भली-भाँति जानते हो?''

पत्नी ने मासूमियत भरा प्रश्न पर प्रश्न किया।

''भली-भाँति तो नहीं मगर रोजाना चैटिंग होते-होते बहुत कुछ हम आपस में एक-दूसरे को जानने लगते हैं और बातें ऐसी होने लगती हैं कि मानो बरसों से जानते हों और मुस्कुराहट होठों पे आ ही जाती है, अपने से लगने लग जाते हैं फिर ये।''

''हूँ'' और पास बैठे पराये से। ''पत्नी हुंकार-सी भरने के बाद बुदबुदाई।

''अभी मजेदार टॉपिक चल रहा है हमारे ग्रुप में। अरे, अभी तुमने क्या कहा था, ध्यान नहीं दे पाया। बोलो ना फिर से, अरे यार किस सोच डूब गई।''

पति मुस्कुराता हुआ तेजी से मोबाइल पर अपनी उंगलियाँ चलाता हुआ एक नजर पत्नी पे डाल बोला।

''किसी सोच में नहीं। सुनो, बस मेरी एक इच्छा पूरी करोगे?''

पत्नी टकटकी लगाए बोली।

''क्या अब तक तुम्हारी कोई अधूरी इच्छा रखी है मैंने? खैर, बोलो क्या चाहिए?''

''मेरा मतलब ये नहीं था, मेरी हर इच्छाएँ आपने पूरी की हैं मगर ये बहुत ही अहम है।''

''ऐसी बात, तो बोलो क्या इच्छा?''

''एंड्रोयड मोबाइल।''

''मोबाइल। बस इतनी-सी बात, ओके इन। मगर क्या करोगी बताना चाहोगी?'' पति चौंकता हुआ बोला।

पत्नी ने भीगी पलकों से प्रत्त्युतर दिया। ''और कुछ नहीं, चैटिंग के जरिये आप मुझसे भी खुल कर बातें तो करोगे।''

♦♦♦

गेट सम्राट

अशोक भाटिया

कॉलोनी की उस गली में जलमल नाथ भी रहता था। उसके पास अपना ठीक-ठीक मकान था, पढ़ी-लिखी नौकरीपेशा पत्नी थी और दो बच्चे थे—सुन्दर और पढ़ने में होशियार। वह सामान्य जीवन जी रहा था। लेकिन जब से पड़ोसी का घर एक से दो मंजिल का हो गया, तब से जलमल के जीवन में हलचल मच गई थी। उसकी इतनी हैसियत नहीं थी कि मकान पर दूसरी मंजिल डाल सके। लिहाजा वह पड़ोसी की ऊँची अट्टालिका से दबा-दबा रहने लगा था।

दूसरी मंजिल सँवारकर पड़ोसी ने अपना गेट भी बदलवा डाला था। हल्के सुन्दर रंग का हल्का और सुन्दर गेट गलीवासियों के बीच आकर्षण का केंद्र हो गया था। वे उसके घर के आगे से आते-जाते गेट-चर्चा में मशगूल हो जाते। जलमल के घर का गेट पड़ोसी के गेट के बिलकुल साथ लगता था। वह रोज दफ्तर जाते हुए दोनों गेटों को देखता। अपना काला गेट उसे गंदे भालू-सा लगता; पड़ोसी का गेट शेरनुमा लगता। पड़ोसी के गेट को देखकर उसकी आँखें चौंधिया जातीं, मानो सूर्य से साक्षात्कार हो गया हो। अपना गेट उसे अँधेरे की प्रतिमा लगता। तिस पर पड़ोसी के गेट पर लगे बरछे देखते ही मानो उसके दिल के आर-पार हो जाते थे। खाना खाते वक्त भी वह गेट उसका स्वाद खराब कर देता था। टी.वी. के अच्छे-भले प्रोग्राम भी उसकी गेट-पीड़ा का निदान नहीं कर पाते थे।

'कुछ करना पड़ेगा इलाज। हमें क्या बोडू समझ रखा है?' उसने सोचा। कुछ दिन गेट चिन्तन किया। घर में गेट-समस्या पर मंत्रणा की। आखिरकार पीड़ा-हरण की योजना बनी। 'ऑपरेशन गेट' की कार्रवाई शुरू हुई। पड़ोसी के गेट से डेढ़ गुना ऊँचा गेट बनवाया गया। उस पर आसमान से बातें करते बड़े-बड़े भाले मोतियों की तरह जड़े गए। इतना ऊँचा गेट पूरी गली में किसी का नहीं था। गेट पर तीन-चार रंगों के पेंट कराए गए। बॉर्डर, पत्तियाँ, फूल, बरछे-चारों के अलग-अलग रंग।

गेट जब एकदम तैयार हो गया, तो अजमल ने अपने परिवार को गेटेश्वर महाराज के दर्शनों के लिए आवाज दी। थोड़ी देर में पूरा परिवार सड़क के बीचों-बीच खड़े होकर गेट-सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ जा रहा था। वे पड़ोसी के गेट को भी कनखियों से देखकर उसकी तुच्छ हस्ती पर टिप्पणी कर रहे थे, जिसका सार था—'छुटभैया कहीं का।' जलमल की चाल में आज असाधारण चुस्ती आ गई थी। वह गेट-उत्सव मनाने के लिए मिठाई ले आया। मिठाई खाते वक्त सबने मिलकर इस असाधारण गेटोपलब्धि का ऊँची आवाज में बखान किया और गेट देवता की महिमा गाई।

जलमल अपनी नजरों में गेट-युद्ध का निर्विवाद विजेता बन चुका था। पर उसे इतने से तसल्ली नहीं हुई। अभी रड़क बाकी थी। वह चाहता था कि पड़ोसी उसकी तरफ देखे और वह आँखों से ही उससे पूछे—कहो कैसी रही? एक बार पड़ोसी को देख वह ऐसा कहने की मुद्रा में आया, लेकिन उसे पड़ोसी ने ऐसा मौका नहीं दिया। फिर कुछ सोचकर उसने अपना स्कूटर निकाला। गेट के नट-बोल्ट उतारकर उसके दोनों पल्ले स्कूटर पर फिट किए। फिर दोनों पल्लों को अपनी पीठ से सटाया। गेट के रंग अपने चेहरे पर चिपकाए और गेट के भाले अपने दिमाग में। फिर स्कूटर स्टार्ट कर विजयश्री के लिए निकल पड़ा...

♦♦♦

सम्पर्क: 1882, सेक्टर 13, करनाल—132001, मो. : 9416152100

जरा ठहरो

डॉ. सुरेश अवस्थी

जरा ठहरो
चलूँगा मैं तुम्हारे साथ
सपनों के रंगमहल में
खेलूँगा तुम्हारे साथ
चहल पहल में
दुलारूँगा सपनों को
पुचकारूँगा अपनों को

जरा ठहरो
अभी तो तैयार होना है मुझे
एक पारदर्शी यात्रा के लिए
अपने लिए नहीं,
किसी सतरंगी सुपात्र के लिए
मुझे बदलने हैं अभी देह के कपड़े
त्यागने हैं
जमा किए हैं जो जीवन भर लफड़े।
खुरचनी है अभी
मन पर ईर्ष्या द्वेष की जमी काई
उतारनी है
विचारों के गर्म दूध पर हिंसा की जमी मलाई
लौटाने हैं चुराए हुए इसके उसके पल
अलमारियों से निकालनी है
थोड़ी सी खादी, थोड़ी मारकीन, थोड़ी ऊन
थोड़ी पॉलिस्टर, थोड़ी मलमल।

जरा ठहरो
चलूँगा तुम्हारे साथ

सम्पर्क: 117, एल, 333 नवीन नगर, कानपुर-208025, मो. 9336123032,
ई-मेल: drsureshawasthi@gmail.com

पहले चुका तो लूँ
लोगों की मेहरबानियों का कर्ज
निभा तो लूँ
इससे उससे किए वायदों का फर्ज।
अभी अभी जलाई है पूजा की आरती
आने ही वाली है फूल लेकर
माली की माँ भारती
तभी तो पूरी होगी पूजा, प्रार्थना
इतना भी नहीं जानते
पूजा के वक्त कहीं भी जाना होता है मना
अभी खोजने हैं मुझे
आरती की थाली में चढ़ाए
मैले कुचैले फटे नोट
जो आज भी कर रहे हैं
पुजारी जी के दिल पर चोट।
आज भी चुराने हैं मुझे
प्रसाद के दो बताशे
चाहता हूँ एक बार फिर देखूं
चढ़ावे के बंटवारे में पुजारियों के तमाशे।
अभी ठहरो
अभी तो कई काम अधूरे पड़े हैं।
ध्यान से देखिए जरा
द्वार पर आशीर्वाद के लालच में
भेंट देने वाले लाइन लगा कर खड़े हैं।

जरा ठहरो
अभी मुझे करना है

देह नहीं, आत्मा का साक्षात्कार
करनी हैं ढेर सारी बातें, स्वयं से
कुंठा का बीमा, कराया है
जिसकी अभी कई किश्तें भी भरनी हैं
परनिंदा की एक एफडी भी है मेरे पास
उसकी मैच्योरिटी की प्रतीक्षा भी करनी है
क्या चाहते हो
इतने सारे काम छोड़ कर
चल दूँ तुम्हारे साथ
तुम्हारे बहकावे में
कटवा लूँ अपने हाथ।

जरा ठहरो
चलूँगा मैं तुम्हारे साथ

♦♦♦

राष्ट्रभाषा हिंदी

प्रो. शरद नारायण खरे

हिंदी हितकर है सदा, हिंदी इक अभियान
हिंदी में तो आन है, हिंदी में है शान।।

हिंदी सदा विशिष्ट है, हिदी है उत्कृष्ट।
हिंदी अपनायें सभी, होकर के आकृष्ट।।

कला और साहित्य है, पूर्ण करे अरमान।
हिंदी में है उच्चता, ''शरद'' सभी लें मान।।

हिंदी का उत्थान हो, हिंदी का सम्मान।
हिंदी पर अभिमान हो, हिंदी का गुणगान।।

हिंदी तो समृद्ध है, हिंदी है बड़ी संपन्न।
हिंदी माने हीन जो, वह नर सदा विपन्न।।

हिंदी में सामर्थ्य है, हिंदी में है तेज।
हिंदी है सरल, क्षमता से लबरेज।।

हिंदी में अध्यात्म है, हिंदी में है धर्म।
लेखक, कवि जो कह रहे, समझ हर इक मर्म।।

हिंदी है भाषा बड़ी, संस्कार की धूप
हिंदी सबकी हितकारी, दास होय या भूप।

भाषा हिंदी राष्ट्र की, लिये राष्ट्र हित भाव।
हिंदी भाषी नित रखें, निज भाषा का ताव।।

संस्कार पोषित करे, अनुशासन-उद्घोष।
हिंदी हमको दे रही, सच्चाई का होश।।

♦♦♦

सम्पर्क: अध्यक्ष, इतिहास विभाग, शासकीय महिला महाविद्यालय, मंडला (म.प्र.)-481661, मो. 9425484382, ई-मेल: khare.sharadnarayan@gmail.com

सच पर चलना

हरीष कुमार अमित

लगती नहीं
कोई ज्यादा देर
सच को झूठ
और
झूठ को सच
साबित करने में
आजकल
लगता है कभी-कभी
कि
रहा नहीं वक्त अब
सच पर नाज करने का
गुजर जाता है सच अक्सर
बचाते हुए नजरें
और
देखता रहता है झूठ उसे
उपहास-भरी नजरों से
थामे रखना सच का दामन
नहीं रही कोई
अक्लमंदी की बात
सच पर चलते रहने से
हो सकता है बस इतना ही कि
मिल सकते हैं
तारीफ भरे कुछ पल
इसके अलावा
होता नहीं हासिल कुछ और
कुछ भी नहीं

♦♦♦

सम्पर्क: 304, एम.एस. 4, केंद्रीय विहार, सेक्टर-56, गुड़गाँव,-122011 (हरियाणा), मो. 0989922110 ई-मेल: harishkumaramit@yahoo.co.in

मौन

योगेंद्र वर्मा 'व्योम'

गाँव का पीपल
सभी से पूछता है
हर किसी की
आँख का जल
मौन क्यों है

भावनाओं पर लगा
प्रतिबंध भारी
है तनों से टहनियों का
युद्ध जारी
तितलियों की ताक में
बैठा शिकारी
स्वार्थ के दुष्कर्म का
फल मौन क्यों है

पथ पथरीला-कंटीला
और दुष्कर
पाँव के छाले कहें
चलना संभलकर
प्रश्न भी गंतव्य के
करते निरुत्तर
गुत्थियाँ उलझी रहीं
हल मौन क्यों है

सुप्त है संवेदना
मानव-हृदय की
नित्य नभ में बात चलती है
प्रलय की
त्यागकर सच, आस फिर भी है
विजय की
नित्य निश्छल ही रहा
पल मौन क्यों है

♦♦♦

सम्पर्क: पोस्ट बॉक्स, नं. 139, मुख्य डाकघर, मुरादाबाद-244001

निर्देश निधि की तीन कविताएँ

अनुकरण

हे आधुनिक भस्मासुरो
तुमने अपनी भक्ति की शक्ति से प्रसन्न कर
ले तो लिया वरदान भोले पिनाकपाणी से
किसी को भी भस्म कर देने का,
उसके सिर पर हाथ रख
पर अब ठीक वह घड़ी है जब
तुम डूब चुके हो मोहिनी के रूप लावण्य में
तुम उसी से सीख रहे हो नृत्य
मोहिनी का हाथ अब उसके सिर पर है
और तुम उसका अनुकरण कर रहे हो।

विभीषण चिरजीवी है

विभीषण की मुखबिरी के कारण विजयी हुए
राम की विजय पर हर्षित होकर
रावण के पुतले को फूंकने वालो
तुम्हें पता तो है न कि
रावण तो मर गया था पर
विभीषण को मिला था चिरजीवी होने का वरदान
तुम सबमें भी होगा कहीं न कहीं जीवन अमृत
और तुम्हारे विभीषण को पता है
तुममें संचित उसकी, ठीक ठीक जगह।

नदियों की देहें

नदियों की देहें जब सिकुड़ने लगें
और थकने लगे उनके भीतर का जीवन
तब दिखेगा तुम्हें नदी के प्यास से बेहाल
लहर रहित सीने पर तुम्हारा अपना अक्स
वह भी औंधे मुँह पड़ा, निर्जीव।

♦♦♦

सम्पर्क: डॉ प्रमोद निधि, विद्या भवन, कचहरी रोड़, बुलंदशहर, (उ.प्र.)
-203001 मो. 9358488084, ई-मेल: nirdesh.nidhi@gmail.com

कविता विकास की तीन कविताएँ

1.

पत्थर की मूरत को जल चढ़ाते
और पीपल के तने को धागे से बाँधते
अपनी-अपनी मन्नतों के भावावेश में
अक्सर लोग रो पड़ते हैं।
ईश्वर उनके लिए तत्क्षण
कितना जीवित होता है
मुझे भी देखना है
अपने ईश्वर को अपने इर्द-गिर्द
तुम आ जाओ तो रो पड़ूँ
मैं भी तुमसे टिक कर।

2.

प्रेम में पगी स्त्रियाँ
चहकती है चिड़ियाँ की तरह
गुनगुनाती हैं
तितलियों की तरह
खिलती हैं कलियों की तरह
जब तक अस्तित्व रहेगा
चिड़ियाँ, तितलियों
और कलियों का
प्रेम में स्त्रियाँ डूबती रहेंगी।

3.

तुम्हारा छूना
तुम्हारे लिए अँगुलियों से
स्पर्श मात्र होता होगा,
मेरे लिए
तमाम सुषुप्त संवेदनाओं को जागृत
करने का पर्याय है।
मृतप्राय कोशिकाओं में दौड़ पड़ता है लहू
चहचहाने लगता है मन का पाखी
और उमंग-तरंग के साथ
बह उठती है मेरे अंदर की नदी

सम्पर्कः डी-15, सेक्टर-9, पीओ-कोयलानगर, धनबाद-826005,
झारखंड

♦♦♦

प्रेम बिहारी मिश्र की दो कविताएँ

एक

हैं दाग घने पर दिखें नहीं, नित कीचड़ में धँसते हैं
आ जाए भूले से इंसाँ, सारे उस पर हँसते हैं
है बात निराली शहरों की, नकली है हर चीज यहाँ
इक कंकरीट के जंगल में, दिल पत्थर के बसते हैं

भूल गए सब छाँव नीम की, भूल गए सब अमराई
सावन के सब झूले भूले, भूल गए हैं शहनाई
फागुन वाला प्यार भुलाया, भूले जगमग दीवाली
वासंती मदहोशी भूले, भूल गए हैं पुरवाई
शूल उगाए अपने हाथों, जख्मों से अब डरते हैं
इक कंकरीट के जंगल में, दिल पत्थर के बसते हैं

बिजली की चकाचौंध में, मंगल दीपक भूल गए
कैक्टस के चहुँ ओर बगीचे, भौंरे तितली फूल गए
सब भूल गए वह पगडंडी, प्रेम जहाँ पर पलता था
अपने हाथों बुना जाल जो, उसी जाल में झूल गए
बड़े अजब ये साँप सपोले, इक दूजे को डसते हैं
इक कंकरीट के जंगल में, दिल पत्थर के बसते हैं

चेहरों पर हैं चेहरे इतने, सिर दर्पण का चकराए
कौन रँगा है किन रंगों में,पता नहीं यह चल पाए
जिसे बनाकर के जो सीढ़ी, आसमान तक पहुँच गया
लगा हुआ पूरी कोशिश में, कैसे उसका कद खाए
घर में चौसर बाहर चौसर, चाल यहाँ सब चलते हैं
इक कंकरीट के जंगल में, दिल पत्थर के बसते हैं

सम्पर्क: सी-501, चित्रकूट अपार्टमेंट्स, प्लाट न. 9, सेक्टर-22, द्वारका,
नई दिल्ली - 110 070

दो

हिंदी सच्चे दिल की भाषा, कर लो स्वीकार प्रिये
अंग्रेजी में बात करें तो, होगा नकली प्यार प्रिये

माँग सितारों से भर दूँगा, अंग्रेजी में क्या बोलूँ
मधुर रात कंसेप्ट अलग है, घूँघट तेरा क्या खोलूँ
ये मन डोले ये तन डोले, मैं तो उलझा तुझमें ही
सब कुछ जतला दूँ मैं लेकिन, अंग्रेजी में क्या बोलूँ
कैसे माँगू अंग्रेजी में, सात जनम का साथ प्रिये
हिंदी सच्चे दिल की भाषा, कर लो स्वीकार प्रिये

ताका -झाँकी हो हिंदी में, अंग्रेजी में रीति नहीं
डेटिंग - चेटिंग होती है, हिंदी वाली प्रीति नहीं
खनकाओ ड्योड़ी में चूड़ी, मैं चुपके से आ जाऊँ
शर्मा कर तुम सिमटो खुद में, ऐसी कोई नीति नहीं
कहीं नहीं वहाँ वो ड्योड़ी, ना चूड़ी का साज प्रिये
हिंदी सच्चे दिल की भाषा, कर लो स्वीकार प्रिये

मैनिपुलेशन का है ज़माना, हमको कोई जाने क्या
आज विदूषक कवि बन बैठे, कविता पहचानें क्या
बने मंच हैं एक अखाड़ा, चलते हैं अब दाँव यहाँ
कविता की है नहीं जरूरत, हमको कोई माने क्या
यदि तुम मानो तो हो पूरा, अपना कवि संसार प्रिये
हिंदी सच्चे दिल की भाषा, कर लो स्वीकार प्रिये

♦♦♦

बादल

गरिमा चारण

हे बादल विरह ही क्यों तेरी कहानी रहा
कभी नभ में, नेत्रों में बिखर पड़ा
सकल लोक की तूने पीड़ा सही
विकल ही तेरी क्यों कथा रही
हर काल में तुझ से ही संवाद रहा
तूने उपमान धारित किये नाना
क्या फिर भी तू सफल रहा
क्या उडेल दिया तूने सब अनकहा
क्या है जो तू कहना चाहता
अनमने भाव को क्यों सींच रहा
युगों युगों की नींव पर तू आश्रित
क्या हुआ जो तू हुआ विचित्र
उस युग में क्या तू राम के काम आया
क्या तूने कालिदास का दुःख
उसके ही अनुरूप बतलाया
प्रिय वेदना में आतुर
क्या भूल गया संदेश चतुर
सुर कबीर हाथों में क्यों तू रहा
घनानंद विरह वेदना का तू पोषक
पन्त सेनापति का तू सम्बल
अज्ञेय ने गढ़े कई तुझ पर उपमान
निराला का भी तू विप्लव विधान
कभी रहा नारी का उपमान तू
कभी रण का संग्राम तू
न कोई राह, न सीमा बाँध पायी
सरहदें तो इंसान के हिस्से में आयी
तुझसे महा रूप को कैसे चुन लूँ
काव्य में कैसे तेरे रूप को बाँध लूँ
शाश्वत है तुझ पर लिखा महा ग्रन्थ
है सत्य तुझ पर जो लिखा गया
तू सदियों से अहसास ही बन कर रहा
न कैद हुआ न ही छुआ गया
एक पुंज सा शीतल बह गया
एक अलौकिक आनंद रह गया...

♦♦♦

सम्पर्क: शोध छात्रा, हिंदी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर, ई-मेल: gajucharan666@gmail.com

संधियों के पल

राधेश्याम 'बंधु'

तुम मिले
लौट आये संधियों के पल,
चुप्पियों के शिविर
में भी एक है हलचल,
कौन पढ़ पाया अभी तक,
दर्द की भाषा,
तय न हो पाई अभी तक
सुख की परिभाषा,
खोजते ही रह गये
हम आंसुओं के हल,
छुड़ाकर जाते कहाँ हो
रोशनी की बाँह
मिली है किसको सदा ही
गुलमोहर की छाँह,
उलझनों में खो न
देना नेह के सम्बल,
रूप के बाजार में कुछ
खो गये अपने,
लौट आये शहर से
हारे थके सपने,
सर्दियों में भोर
लायी धूप के कम्बल,
इस शहर में लोग मिलकर
भी नहीं मिलते
देखते हैं रोज लेकिन
हम नहीं दिखते,
आज रिश्तों की
नजर भी बहुत है चंचल।

♦♦♦

सम्पर्कः बी-3/163, यमुना विहार, दिल्ली-110053

वासंती दोहे

रामबहादुर चौधरी 'चंदन'

पतझड़ की पीड़ा कली, गई अचानक भूल,
प्रिय वसंत की बाँह में, झूम उठी वन फूल,

देखो रास वसंत ने, कैसा रचा कमाल,
कली-कली गोपी बनी, बना भँवर गोपाल।

जादू किया वसंत ने, ऐसा हुआ कमाल,
हरी-भरी सी हो गई, सूखी-सी ये डाल।

कण-कण में होने लगा, नवरस का संचार,
बूढ़े तरूवर में जगा, नव यौवन का प्यार।

धरा सुहागिन सी लगे, पहन नवल परिधान,
मानो राज वसंत ने, किया हो सिन्दूर-दान।

बरसा रंग उमंग का, भीगा दिल का देश,
बंद हृदय को खोलता, वासंती परिवेश।

♦♦♦

सम्पर्कः फुलकिया, बरियारपुर, मुंगेर, बिहार-811211

दो दृश्य

ख्याल खन्ना

एक

नये युग की यही सच्चाईयाँ हैं
लहू सस्ता है, महँगी रोटियाँ हैं
भला करके भी मिलती है बुराई
हवन करते भी जलती उँगलियाँ हैं
तुम्हारे नैन मदिरा के कटोरे
तुम्हारे बोल गुड़ की भेलियाँ हैं
मेरे मन प्राण पर शासन तुम्हारा
मेरी सोचें तुम्हारी दासियाँ हैं
बिछा लो, हम सभी को मात देंगे
तुम्हारे पास जितनी गोटियाँ हैं

दो

उसी के पक्ष में थे सब समीकरण मित्रो
हुआ न झूठ का जबतक अनावरण मित्रो
विफल रहे जो निदानों के उपकरण मित्रो
हमें भी लेना पड़ी ईश की शरण मित्रो
समय को व्यर्थ गँवाना नहीं समझदारी
है मूल्यवान बहुत एक-एक क्षण मित्रो
हरेक प्रश्न का होता है, कुछ न कुछ उत्तर
हर इक समस्या का भी है निराकरण मित्रो
'ख्याल' उसको खलेगी न शत्रुओं की कमी
तुम्हारे जैसे मिले जिसको मित्रगण मित्रो

♦♦♦

सम्पर्कः 1090, जनकपुरी, बरेली (उ.प्र.)-243122, मो. 8899151666

अमलतास पर चिड़िया

शिव डोयले

उड़ा तेजी से पक्षी
डाल, पत्ते खड़खड़ाये
हिल गया पूरा पेड़

गर्दन उठा देखा
आसमान ने
ऊँची होती उड़ान
दिशाएँ करती स्वागत

एक मछली
उछली ताकत से
लहर-लहर कँपकँपाई
डर के मारे
किनारों को थपथपाते हुए
भौचक रह गया तालाब

जंगल में दहाड़ा शेर
खलबली मच गई जानवरों में
हवा थरथराती चली गई
दूर...दूर... बहुत दूर तक
जहाँ तक फैला हुआ है जंगल

इन सबके बावजूद बेखटक अपनी धुन में
अभी भी गा रही है
अमलतास पर बैठी
एक नन्ही चिड़िया
हरियाली के गीत

♦♦♦

सम्पर्कः झूलेलाल कॉलोनी, हरीपुरा, विदिशा-464001 (म.प्र.),
मो. 9685444352

भला करने वाले

वीरेन्द्र 'सरल'

हम तो एक हाथ ले और एक हाथ दे के सिद्धांत पर साहित्य सेवा करते हैं तभी तो लोग गाते हैं जिसका कोई नहीं है उसका भलाईदास तो है यारों। अब और ज्यादा मेरा दिमाग मत खाइये जल्दी लाइये, कहते हुए किसी प्रशिक्षित भिखारी के अंदाज में उसने अपना हाथ फैला दिया।

साधो! सावधान रहो। ज़माना बड़ा खराब है। हर मोड़ पर भला करने वाले खड़े हैं। कौन कब किसका भला कर दे कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसा ही कुछ सोचता हुआ मैं चाय की चुस्की लेते हुए घर के आँगन में बैठा था। तभी डाकिया मेरे हाथों में एक लिफाफा थमा के चला गया। लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ा तो मेरा दिमाग घूम गया। पत्र में लिखा था कि ''आपने शिक्षा, कला, साहित्य, संस्कृति, खेल, वकालत, स्वास्थ्य, बीमा, नसाबंदी, कृषि, उद्यानिकी, ग्रामोत्थान, अंधश्रद्धा निर्मूलन, वन्यजीव संरक्षण, बाल कल्याण इत्यादि के अतिरिक्त जो हम नहीं जानते उन क्षेत्रों में भी उत्कृष्ट एंव प्रभावोत्पादक कार्य किया है इसलिए हम आपको एक सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित करना चाहते हैं। वैसे तो हमारे गोदाम में एक से बढ़कर एक सर्वोच्च सम्मान रखे हुए हैं या दूसरे अर्थ में हमारे सभी सम्मान सर्वोच्च ही हैं। जिन्हें हम गरिमामय समारोह आयोजित करके देते हैं। यदि आप किसी भी कारण से समारोह में सम्मान ग्रहण करने नहीं आ पाते हैं तो अपने दुधमुँहे बच्चे से लेकर घरेलू नौकर तक को सम्मान ग्रहण करने के लिए समारोह में भेज सकते हैं। हम उन्हें ही आपका प्रतिनिधि समझकर सम्मान पत्र थमाने का पुरुषार्थ करते हैं। ग्राहकों का संतोष ही हमारा लक्ष्य है। यदि आप प्रतिनिधि नहीं भेज सकते तो हम डाक से सम्मान पत्र आपके घर तक भी पहुँचा सकते हैं क्योंकि हमारे पास घर पहुँच सम्मान सेवा सुविधा भी उपलब्ध है। साथ ही हम आपके सम्मान को अखबारों में छपवाने का पुण्य कार्य भी करते हैं। बड़े-बड़े शहरों में आयोजित बड़े समारोह का उल्लेख हम अपने ढंग से करते हैं। कृपया एक बार सेवा का अवसर प्रदान करें। बस, हम तो आपका भला करना चाहते हैं।''

मैं आसमान की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर बुदबुदाया, 'हे भगवान! आखिर मुझसे ऐसी क्या गलती हो गई, अनजाने में ऐसा कौन-सा अपराध हो गया प्रभु! जो ये लोग मेरा सम्मान करने पर तुले हैं। पत्र में उल्लेखित किसी भी क्षेत्र से मेरा दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं है। इस संस्था से ऐसे पत्र मुझे पहले भी कई

सम्पर्क: ग्राम-बोड़रा, पो.-भोथीडीह, व्हाया-कुरुद, जि.-धमतरी (छ.ग.), पिन-493663

बार मिल चुके हैं। इन भला करने वालों से मुझे बचा लो प्रभु। अब मैं तुम्हारी शरण में हूँ।

पत्र पढ़कर मैं बहुत टेंशन में आ गया था। मैं सोच रहा था, क्या ये लोग त्रिकालदर्शी हैं। अरे ! पत्र में उल्लेखित क्षेत्रों में मैंने कब उत्कृष्ट और प्रभावोत्पादक कार्य किया है ये तो मुझे ही पता नहीं है। फिर इन्हें कैसे पता चल गया। ये लोग क्या गर्भ से ही उदारता का ठेका लेकर पैदा हुए हैं ? जो काम मैंने किया ही नहीं है उसके लिए मुझे सम्मानित करने के लिए क्यों ये हाथ धोकर पीछे पड़े हैं। क्यों ये मुझे सम्मानित करने के लिए मरे जा रहे हैं।

दूसरे दिन मैं पत्र पर लिखे पते पर पहुँच गया। वह एक छोटा कमरा था, जिसके बाहर बड़ा साइनबोर्ड टंगा था, जिस पर लिखा था, ''कार्यालय अनन्त आकाश, संचयी साहित्य अकादमी'', अध्यक्ष—भलाईदास। वहाँ एक आदमी कम्प्यूटर पर सम्मान पत्र टाइप करते हुए मिला। मैंने उसका अभिवादन करते हुए कहा—''मैं श्री भलाईदास जी से मिलना चाहता हूँ।'' उसने मुस्कुराते हुए कहा—''जी, मैं ही भलाईदास हूँ। कहिए, आपकी क्या भलाई करूँ।'' मैंने उन्हें उनका भेजा हुआ पत्र दिखलाया। इस बार उसने गर्मजोशी से हाथ मिलाते हुए बैठने का निवेदन किया। मैं चुपचाप बैठ गया। फिर उसने कहा—''लाइये, जल्दी कीजिए।'' मुझे समझ में नहीं आया तो मैंने पूछा—''मैं आपका मतलब नहीं समझ पाया ?'' उसने दाँत निपोरते हुए कहा—''कोई बात नहीं, कुछ देर बाद समझ जायेंगे और सुनाइये, कैसे हैं आप ?'' मैंने सकुचाते हुए कहा—''बाकी सब तो ठीक है मगर मन में एक जिज्ञासा जरूर है। आपके कार्यालय का नाम अनन्त आकाश है परन्तु इस कार्यालय से आकाश का कोई भी कोना ठीक से नहीं दिख रहा है। दरवाजे के सिवाय यहाँ खिड़की और रोशनदान तक नहीं है।'' वह खिसियानी बिल्ली की तरह खम्भा नोचते हुए मुस्कुराकर रह गया। मैंने आगे पूछा—''आप अपनी अकादमी की गतिविधियों के बारे में भी तो कुछ बताइये। जैसे पुस्तक लेखन, पुस्तक समीक्षा, प्रकाशन या किसी गंभीर विषयों पर संगोष्ठी या कार्यशाला वगैरह होता है या नहीं ?'' उसने निर्लज्जता पूर्वक कहा—''महाशय। हम इन झंझटों में नहीं पड़ते। हम तो विशुद्ध रूप से केवल साहित्य सेवा ही करते हैं। जैसे शासन की मंशा है, विकास का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे वैसे ही हमारी मंशा है सम्मान का लाभ अंतिम व्यक्ति को मिले। जिनका कोई सम्मान नहीं करता उसका सम्मान हम करते हैं। चाहे सम्मान पाने वाला इसके योग्य है या नहीं इससे हमें कोई लेना देना नहीं होता। अब आप ही बताइये, इससे बड़ी साहित्य सेवा और क्या हो सकती है।

हम तो एक हाथ ले और एक हाथ दे के सिद्धांत पर साहित्य सेवा करते हैं तभी तो लोग गाते हैं जिसका कोई नहीं है उसका भलाईदास तो है यारो। अब और ज्यादा मेरा दिमाग मत खाइये जल्दी लाइये'', कहते हुए किसी प्रशिक्षित भिखारी के अंदाज में उसने अपना हाथ फैला दिया।

इसके बाद भी मैंने मासूमियत से पूछा—''श्रीमान, मैं अब भी कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ।'' उसने तुरन्त गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए कहा—''अरे हम तो आपको पढ़ा-लिखा आदमी समझते थे। पत्र में साफ-साफ लिखा है सम्मान पाने के लिए हजार रुपये जमा करना पड़ेगा। हजार नहीं है तो पाँच सौ ही दे दीजिए। इतना भी नहीं है तो कम-से-कम तीन सौ रुपये तो दे दे बाबा सम्मानित होने के लिए। हमारे पास राशि के हिसाब से अलग-अलग किस्म के सम्मान पत्र टाइप किये हुए पड़े हैं। जो जैसा देगा, उसको वैसा मिलेगा, अब समझा कुछ ?'' मैंने बचकानी अंदाज में पूछा—''फोकट में देने के लिए कोई सम्मान पत्र नहीं है क्या आपके पास ?'' वह बौखला गया, दाँत किटकिटाते हुए बोला—''निकल जा यहाँ से, दूर हो जा मेरी नजरों से। जब जेब में फूटी कौड़ी नहीं है तो क्या करेगा सम्मानित होकर ? मैंने तुझे क्या समझा था और तू क्या निकला। अबे बुराई लाल, जमाने भर की बुराई है तेरे भीतर। मैं तेरा भला करने चला था मगर तू ने तो मेरा बुरा करके ही छोड़ा। दफा हो जा मेरी निगाहों के सामने से वरना मैं।'' उसकी हालत देख, मैं डर के मारे वहाँ से चुपचाप खिसक गया।

मैं उन भला करने वालों को कोसते हुए थके हारे कदमों से घर लौटा। रिलेक्स होने के लिए टी.वी. ऑन किया। उसमें भी भला करने वाले कई तरह के विज्ञापन दिखाये जा रहे थे। मैंने चैनल बदलकर समाचार सुनना शुरू किया। उसमें समाचार आ रहा था कि चुनाव का बिगुल बज गया है। आप अपना भला करवाने के लिए तैयार हो जाइए... मैं सोचने लगा कि अब तो खैर नहीं, भला करने वाले कभी भी फटक सकते हैं।

♦♦♦

'मोगेम्बो खुश हुआ'

मीना अरोड़ा

जिस दिन यह तस्वीर बोल उठेगी:-'मोगेम्बो खुश हुआ' उस दिन मैं यह तस्वीर उतार कर जल प्रवाह कर दूँगी, ताकि संस्कारों की सजा से, आने वाली पीढ़ी मुक्त हो जाए।

सनातन धर्म में किसी वस्तु या व्यक्ति का जल प्रवाह तभी होता है जब वह संसारी कर्मों से मुक्त हो जाता है।

मायके से ससुराल को रुखसत होते समय मुझे मेरी सखियों ने तरह-तरह के तोहफे दिए।

मेरी एक विवाहित सखी ने मुझे मोगेम्बो की तस्वीर भेंट की। उसके इस उपहार पर मैं आश्चर्यचकित थी।

जब मैंने उससे पूछा :-''मैं इसका क्या करूँगी?''

उसने मुझसे कहा:-'' यह तस्वीर ससुराल घर के ड्राइंग रूम में टाँग देना। और हाँ, यह कोई मामूली तस्वीर नहीं है। यह बोलती भी है।''

जब तुम अपने ससुराल पक्ष के सभी सदस्यों को जिस दिन खुश कर लोगी, उस दिन यह तस्वीर बोल उठेगी:-'मोगेम्बो खुश हुआ।''

मेरा यकीन मानो उस दिन तुम अपने भारतीय संस्कारी बहू होने का ताज अपने शीश पर सजा हुआ महसूस करोगी। तुम्हारी ग्रीवा और तुम्हारी दर्द करती झुकी कमर उस दिन तन जाएगी। तुम्हारे जवाब दे चुके घुटने पी. टी. उषा को चुनौती देंगे।'

उसकी बात सुनकर मैं खिलखिला कर हँसने लगी।

मैंने उससे कहा:-''कौन सी सदी में जी रही हो। मैं तुम्हारे डराने से डरने वाली नहीं। मेरे पास वह सभी कलाएँ हैं, जिनसे ससुराल वालों का दिल जीत लिया जाता है।

तुम तो जानती हो मुझे कढ़ाई, बुनाई, सिलाई, खाना पकाना, बेकरी, पेंटिंग, क्रोशिया तो आता ही है, इसके साथ मैं नाचती और गाती भी अच्छा हूँ।

अगर इससे भी ज्यादा किसी की डिमांड हुई तो मुझे तैरना, शतरंज खेलना, प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेना, भजन-कीर्तन, ढोलक, हारमोनियम बजाना सब कुछ आता है।

मैंने दसवीं और बारहवीं, फर्स्ट क्लास पास की हैं।

साथ ही साथ मैं बी.ए. इंग्लिश और अर्थशास्त्र में एम.ए. हूँ।

सम्पर्क: हिमालय फार्म, बरेली रोड़, हल्द्वानी-263139, जिला-नैनीताल, (उत्तराखंड)

हिंदी, पंजाबी, संस्कृत, अंग्रेजी पर मेरी अच्छी पकड़ है। और थोड़ा बहुत उर्दू भाषा का भी ज्ञान रखती हूँ।

मेरी शायरी के लोग दीवाने हैं।

मुझे नहीं लगता कि तस्वीर ज्यादा देर तक चुप रह पायेगी।

मेरी कमर के झुकने या घुटनों के जवाब देने की नौबत तो कभी नहीं आएगी।'

मेरा जवाब सुनकर वो जोर-जोर से हँसने लगी।

मुझे उसका उपहार चेलैंज जैसा लगा।

मैंने उसकी दी तस्वीर को चेलैंज मान ससुराल घर में घुसते ही ड्राइंगरूम की दीवार पर टाँग दिया।

और फिर उस तस्वीर की आवाज पर अपने कान टिका दिए।

दिन हफ्ते, हफ्ते महीने और महीने सालों में बदल गए, पर तस्वीर खामोश रही।

मुझे अपनी झुकी कमर और जवाब देते घुटनों पर भी रहम आने लगा।

पर एक सच्ची संस्कारी भारतीय बहू होने के नाते मैं सिर्फ इंतजार करती रही कि एक दिन तस्वीर जरूर बोलेगी।

सासू माँ तस्वीर की ओर उंगली उठा कर अक्सर पूछती-'यह कौन-सा रिश्तेदार है तुम्हारा। शादी में तो दिखा नहीं। तुम इसकी तस्वीर को ऐसे निहारती हो जैसे यह बोल उठेगी।

मैं उनकी बात के जवाब में मुस्कुरा देती। पर उनसे कह ना पाती कि मुझे इसके बोलने की प्रतीक्षा है।

जिस दिन यह तस्वीर बोल उठेगी:-'मोगेम्बो खुश हुआ' उस दिन मैं यह तस्वीर उतार कर जल प्रवाह कर दूँगी, ताकि संस्कारों की सजा से, आने वाली पीढ़ी मुक्त हो जाए।

सनातन धर्म में किसी वस्तु या व्यक्ति का जल प्रवाह तभी होता है जब वह संसारी कर्मों से मुक्त हो जाता है।

मेरे सारे गुण और कलाएँ अड़ोस-पड़ोस की बहुओं संग तराजू में तौले जाते।

हर बार मेरा पलड़ा ऊपर को उठ, मुझे चिढ़ाता।

अपना पलड़ा हल्का और दूसरे का भारी देख मैंने अपना वजन बढ़ाना शुरू कर दिया।

मेरी पतली कमर इस कंपटीशन के चक्कर में कब कमरा हो गई मुझे पता ही नहीं चला।

टी.वी. पर योग, प्राणायाम सुनने और देखने को मिलते, पर करने का समय कभी नहीं मिलता।

दुख तो इस बात का था कि मेरे बढ़ते वजन के साथ मेरा पलड़ा और भी ऊपर उठ रहा था।

अब घर की औरतों के साथ पतिदेव भी ताना देने से बाज ना आते।

'चार लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे' की तर्ज पर 'बगल वाली को देखो' वह नौकरी पर भी जाती है और घर के सारे काम भी बखूबी निभाती है, जैसे जुमले करीब-करीब रोज मेरे कानों को सुनाई देते।

मैंने कई बार अगल- बगल वाली नौकरीशुदा पड़ोसनों की जमीनी हकीकत से परिवार की महिलाओं को वाकिफ कराने की असफल चेष्टा की।

मेरे 'एम.ए'. को 'ऐं वें 'कहने में परिवार वालों को बिल्कुल भी संकोच ना होता।

वो अक्सर मुझसे कहते इस एम. ए. से अच्छा तो तुम भी बी. एड. कर लेती। चार पैसे कमा कर ले आती। उन्हें देखो वो घर के कामों के साथ पति का हाथ भी बँटाती हैं।

इस तरह की नेक सलाहें सुनने को मेरे कान अभ्यस्त हो चुके थे।

पड़ोस की एक 'सरकारी अध्यापिका' अक्सर मेरे घर आती।

वह भी मुझे मेरी सास के सामने कहती:-'अरे सारा दिन क्या करती हो? मुझे देखो मैं घर और स्कूल दोनों कुशलता से चला रही हूँ।'

उसकी बात पर मेरा मुख अवाक् खुला रह जाता।

उसके बच्चे अपने कपड़ों पर बटन टँकवाने और होमवर्क करवाने को अक्सर मेरा द्वार खटखटाते।

उसका छोटा बेटा तो सब्जी भी माँग कर ले जाता।

क्योंकि रोज-रोज अचार चटनी से रोटी खाना शायद उसे अच्छा नहीं लगता था।

वो शिक्षिका महोदया अपने घर के कामकाज के लिए अक्सर स्कूल से बड़ी उम्र के छात्र-छात्राओं को घर लाकर उनसे साफ सफाई करवा लेती। मेहनताने में उन बच्चों को बाकी बच्चों से नंबर थोड़े ज्यादा दे देती।

उसकी यह हरकत मुझ पर बहुत नागवार गुजरती।

पर सासू माँ उसे चुस्त और सयानी होने का मैडल पहना देती।

वक्त कभी किसी का सगा नहीं हुआ।

एक -एक कर बुजुर्गों की तस्वीरें मोगेम्बो की तस्वीर संग दीवार पर टंग गयीं।

अब सास बनने की मेरी बारी थी।

मैं मन ही मन भयभीत थी क्योंकि मैं अपनी सास का एक भी गुण खुद में भर नहीं पायी थी।

मैं दूर के सपने पास से संजो रही थी।

पहले दिन जब बहू ने घर में कदम रखा, तो मैंने आरती उतारते हुए उसके हाथों की ओर देखा, उसके हाथों में कोई तस्वीर न थी।

मैंने अपनी मॉडर्न बहू को दुलारते हुए कहा :-'बेटा, तुम्हें क्या-क्या आता है।'

उसने कहा :-'कुछ नहीं।'

मेरे मुख से बरबस निकला :-'मोगेम्बो खुश हुआ।'

और मेरी नींद खुल गई। नजरें घुमा कर देखा तो बेटा अपने बिस्तर पर सोया हुआ था।

मैंने ड्राइंग रूम में जाकर दीवार से मोगेम्बो की तस्वीर को उतार दिया।

♦♦♦

रचनाकारों से विशेष अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी आदि एक से अधिक और कविता आदि दो से अधिक न भेजें।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियाँ (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं वर्तनी को कृपया भली-भाँति जांच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

पुस्तकं समर्पयामि

शोभना श्याम

जैसे आत्माएँ इस असार संसार में आवागमन के चक्र में बँधी आती जाती रहती हैं इसी प्रकार लोकार्पण में 'तू मेरे में तो मैं तेरे में' के अन्योनाश्रित क्रम में बँधे तो कुछ चाय-नाश्ते, खाने आदि की सुगंध से खिंचे आसपास के फुटकर लेखक और फुरसतिये वयोवृद्ध चले ही आते हैं। कुछ चतुर लोकार्पक इसी आयोजन में एक छोटी-सी काव्य-गोष्ठी रखकर काफी अतिरिक्त मछलियाँ फाँस लेते हैं।

सम्पर्कः 1254, सेक्टर-46, गुरूग्राम, हरियाणा

जैसा कि नाम से ही छलक और झलक रहा है, ये अक्षर समाज-सेवा और राष्ट्र-समर्पण की उदात्त भावना के वशीभूत होकर लिखे गए हैं। किसी जीवित अथवा मृत व्यक्ति या घटना से इनकी साम्यता होना न होना मात्र संयोग हो सकता है।

हमारे समाज में सबसे अधिक समर्पित कृत्य 'पुस्तक-लोकार्पण' की मार्किट वेल्यू न लगाए जाने के कारण देश की अर्थव्यवस्था में इसके योगदान को कभी आंका ही नहीं गया और इसे मात्र लेखकीय खुजली मान लिया गया। हालाँकि हमारे समाज में लेखक को ही सबसे फालतू जीव माना गया है लेकिन यही अपने फालतूपने में अपनी जर्जर जेब को बार-बार कटा कर असंख्य लोगों को रोजगार का अवसर देकर देश की अर्थव्यवस्था में अपना निर्मूल्य योगदान देता है। हालिया वर्षों में लोकार्पण उद्योग तेजी से विकसित होकर नए-नए मानदंड प्रस्तुत कर रहा है।

अगर शुरू से शुरू करें तो लेखक पहले तो लिखने के लिए रात-रात जाग कर बिजली, इन्वर्टर और लैम्पों आदि की खपत बढ़ाता है फिर टाइपिंग से लेकर पाण्डुलिपि तैयार होने की प्रक्रिया में स्टेशनरी, पैन, पैन-ड्राइव आदि की बिक्री में इजाफा होता है। इस पाण्डुलिपि के पुस्तक रूपाकार ग्रहण करते-करते प्रकाशक की हलवा पूरी से लेकर प्रेस में काम करने वालों की रोटी का इंतजाम हो चुका होता है।

अब बारी आती है लोकर्पण की जिसके लिए पाँच सौ रुपये से लेकर पाँच लाख तक की वैराइटी उपलब्ध है। जितनी जेब, उतनी भारी होती है लोकार्पण की चेष्टा।

राजधानी में तो बाकायदा ऐसा मैदान है जहाँ एक छमाही मेले में हजारों लोकार्पण परमगति को प्राप्त हो जाते हैं। आजकल जनसंख्या-विस्फोट की ही तरह पुस्तक विस्फोट भी हो रहा है। एक महाशय तो प्रतिवर्ष पाँच से सात पृष्ठों की लगभग सौ पुस्तकें छपवाते हैं और दस-दस पुस्तकों के सामूहिक लोकार्पण से जहाँ

साहित्य और इस उद्योग दोनों में अपना धनात्मक योगदान दे रहे हैं वहीं लोकार्पण में ये पुस्तकें फ्री बाँटकर इस उद्योग के परजीवी रद्दी-उद्योग में भी गुणात्मक योगदान दे रहे हैं।

जैसे आत्माएँ इस आसार संसार में आवागमन के चक्र में बंधी आती-जाती रहती हैं इसी प्रकार लोकार्पण में 'तू मेरे में तो मैं तेरे में' के अन्योनाश्रित क्रम में बँधे तो कुछ चाय-नाश्ते, खाने आदि की सुगंध से खिंचे आसपास के फुटकर लेखक और फुरसतिये वयोवृद्ध चले ही आते हैं। कुछ चतुर लोकार्पक इसी आयोजन में एक छोटी-सी काव्य-गोष्ठी रखकर काफी अतिरिक्त मछलियाँ फाँस लेते हैं।

अब आप स्वयं हिसाब लगाइये कि यदि एक महीने में पाँच सौ लोकार्पण हों तो इनमें से कम-से-कम आधे तो किराये के सभागारों में होते हैं फिर कम-से-कम पचास श्रोता प्रति लोकार्पण के हिसाब से लगभग पच्चीस हजार लोगों के चाय नाश्ते और कहीं-कहीं तो खाने के द्वारा कितने चाय वालों और केटरर्स को काम मिल जाता है।

मंच पर शहर के कुछ नामी-गरामी उपस्थित होते हैं जो अपनी बोलास के चलते पुस्तक के साथ-साथ लगे हाथ अपनी महानता के झंडे भी गाड़ लेते हैं। मंच से लोकार्पक की रचनाओं पर इतने कसीदे पढ़े जाते हैं कि गोलोक में विष्णु भगवान भी भ्रमित होकर स्वयं को चिकोटी काटकर देखते हैं कि अपने लेटेस्ट अवतार में 'यदा यदा ही...' कहकर आया था तो कहीं 'साहित्यस्य ग्लानिर्भवति लेखके...' से द्रवित होकर इस लेखक या कवि के रूप में अवतार तो नहीं ले चुका हूँ? पुस्तक लोकार्पक भी आत्मविमुग्ध चेहरे से मानों ऐलान करता हुआ कि अब मैं आ गया/गई हूँ सो साहित्य के अच्छे दिन आ गए समझो, अपने मन की सवा मन भारी बात करता अपनी रचनाओं के एक के बाद एक स्वत: उद्भूत पाठन से कार्यक्रम को इतना लम्बा कर देता है कि सिर दर्द की गोलियों की अतिरिक्त खपत से दवा उद्योग भी निहाल हो जाता है।

कुछ अक्लमंद श्रोता इससे बचने के लिए बीच-बीच में अपनी नींद पूरी कर लेते हैं तो इसे सिरदर्द की गोलियों का नुकसान कदापि न समझें बल्कि ये तो चक्रवर्ती ब्याज के समान इसी लोक हितकारी उद्योग में पूँजी निवेश की तरह हैं क्योंकि यहाँ नींद पूरी कर वह रात्रि जागरण कर लिखने के लिए तैयार हो जाता है परिणाम एक और पुस्तक एक और लोकार्पण।

इन लोकार्पणों में अभी तक वक्ताओं को मानदेय प्रदान करने की तुच्छ मानसिकता विकसित नहीं हो पाई हैं सो इसके 'सम-मान' स्वरूप शाल या शॉलनुमा दो गजी कपड़े के टुकड़े, पटके आदि से काम चलाया जाता है, अब चूँकि ये घर में तो उगते नहीं, बाजार से ही खरीदे जाते हैं। इन लोकार्पणों के चलते आजकल सबसे ज्यादा जोर-शोर से जो व्यवसाय दूधो नहा रहा है वह है लकड़ी, टिन, प्लास्टिक या अलॉय के बने सम्मान पत्र और स्मृति चिन्हों का। 100 रुपये से लेकर 1000 रुपये तक के किसी भी स्मृति चिन्ह पर अपना और सम्माननीय का नाम छपवाइये और फिर जिसे चाहे सम्मानिये।

सम्मान से याद आया कि अगर आयोजन के फोटू न खिंचे तो मोर जंगल में नाच कर रह जायेगा। शादियों के ऑफ सीजन में ये लोकार्पण ही फोटोग्राफरों के चूल्हे में आग जलाये रखते हैं। अन्यथा 'जेबे जेबे मोबाइल' के युग में बेचारे फोटोग्राफर भूखे ही भजन करते रह जाते।

इसी तरह टैंट, लाइट, माइक, बैनर, पुष्पगुच्छ, फूलमाला, निमंत्रण-पत्र आदि आदि। ये तुच्छदर्शी लेखक कितने व्यवसायों का पालक-पोषक सिद्ध होता है, यह गणित 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' की भाँति अगणित हुआ जाता है।

इस आयोजनोपरांत साहित्य के क्षेत्र में हुए इस अभूतपूर्व अनुष्ठान की समीक्षाएँ और रिपोर्ट आदि छाप कर कतिपय छोटे-मोटे अखबार भी अपनी चार जून की रोटी और चाय कमा लेते हैं। इस प्रकार गोबर से गैस और गैस से खाना बनाने की प्रक्रिया चलती रहती है।

हमने भी पिछले दिनों कई लोकार्पणों में श्रोता बन कर अपनी पुस्तक तैयार कर ली हैं सो शीघ्र ही हम भी आप सबकी उपस्थिति में बड़ी शान से लोकार्पण के महायज्ञ में अपनी समिधा डालते हुए कहेंगे—

अहं पुस्तकं समर्पयामि, इदं त्वं इदं न मम!!! ♦♦♦

रणविजय कृत 'दर्द माँजता है'

गिरीश पंकज

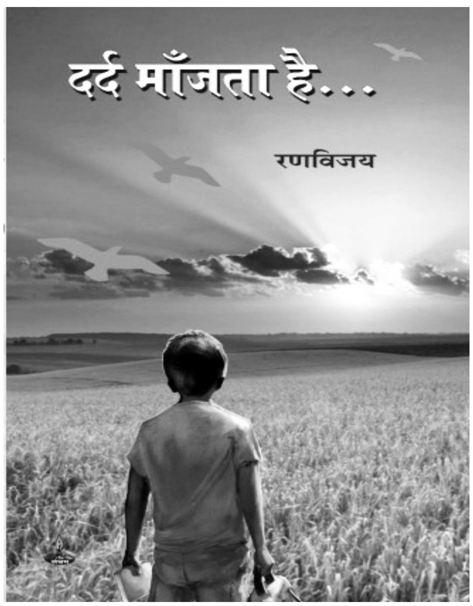

समीक्षित कृति
दर्द माँजता है
रचनाकार
रणविजय
प्रकाशक
साहित्य संचय, सोनिया विहार, दिल्ली
मूल्य: 150 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2018

सम्पर्क: जी-31, न्यू पंचशील नगर, रायपुर (छत्तीसगढ़) मो: 09425212720, ई-मेल: girishpankaj@gmail.com

रणविजय का प्रथम साहित्यिक प्रयास, कहानी संग्रह ''दर्द माँजता है'' साहित्य संचय प्रकाशन द्वारा प्रकाशित है। व्यवसाय से लेखक ब्यूरोक्रेट हैं जो कि भारतीय रेल सेवा में कार्यरत हैं, पढ़ाई लिखाई से वे इंजीनियर हैं। निश्चय ही यह सवाल मन में आता है कि एक इंजीनियर को साहित्य में रूचि कैसे हुई? इसका जवाब भी काफी कुछ उन्होंने अपनी ही पुस्तक में ''दो शब्द'' में लिखा है। वस्तुत: लेखक को शुरू से ही कहानी उपन्यासों को पढ़ने का शौक रहा और बाद में सिविल सर्विसेज उसने हिंदी साहित्य से क्वालीफाई किया। इसकी झलक उनके सधे हुए लेखन से उनकी कहानियों में मिलती है। कहानियों का विन्यास इस तरह है कि वह कथानक से पाठक को फिसलने नहीं देता है। संग्रह में कुल 10 कहानियाँ हैं और वह भी विभिन्न विषयों पर आधारित इसलिए पाठक को और आनंद की अनुभूति होती है कि उसमें कहीं एकरसता नहीं है।

संग्रह की भूमिका भारत सरकार से मुंशी प्रेमचंद अवार्ड से सम्मानित लेखक श्री तेज प्रताप ने लिखी है। जिन्होंने एक सार सा दिया है इस संग्रह की कहानियों का।

संग्रह की प्रथम कहानी 'वंचित' कई स्तरों पर गुँथी हुई रचना है। 20 वर्ष का समय अंतराल और उसमें घटी महत्वपूर्ण घटनाएं संक्षेप में कहानी में आती-जाती रहती है। कहानी कभी वर्तमान में चलती है तो कभी 20 साल पीछे, परंतु पाठक को कहीं भी असहजता नहीं होती समझने में। कथा का मुख्य पात्र विनीत अंत में हमारी दया का पात्र बन जाता है और हमारे रोष का भी। बहुत ही सधे तरीके से लेखक चरित्रों से आपका परिचय कराता है, फिर वास्तविक घटनाओं की यात्रा से होते हुए वह आपको लाकर एक ऐसे मोड़ पर खड़ा कर देता हैं जहाँ कहानी अचानक खत्म हो जाती हैं, फिर आप ठहरकर सोचने को मजबूर हो जाते हैं कि इसके बाद क्या हुआ होगा। हमारे मन में यह कौतूहल और जिज्ञासा उछलने लगती है कि साधना का क्या हुआ, विनीत का क्या हुआ और मानसी ने ऐसा क्यों किया? अच्छी आधुनिक कहानियों में प्रवृत्ति है कि कहानियाँ एक मोड़ पर आकर रुक जाती है और फिर वह आपके दिमाग में चलती है। इस दृष्टिकोण से यह बहुत ही सुंदर कसी हुई कहानी बनी है।

संग्रह की दूसरी कहानी 'मेरे भगवान' सहज सरल घटनापरक कथा हैं जो आपको सम्मोहित करती है। 'मास्टरजी का पात्र', उच्च मानव मूल्यों की प्रतिष्ठाकरण करती दिखती है। कहानी का क्लाइमैक्स इतना खूबसूरत है जहाँ आप कर्ज और कृपा में फर्क समझ सकते है। बहुत सूक्ष्म और अनकहे तरीके से लेखक ने यह भाव प्रकट किया है कि जीवन में सदाशयता और सदिच्छा भी कमाना चाहिए। यह आपको और आगे बढ़ने में सहायक है।

पुस्तक का शीर्षक इसकी एक कहानी से लिया गया है और कहीं ना कहीं यह अज्ञेय की लाइन दुख सबको माँजता है, से प्रभावित है। शीर्षक में एक तरह का आकर्षण है जो पुस्तक की साहित्यिक गंभीरता को तुरंत परिलक्षित करता है, साहित्य में गहरे सरोकार रखने वालों को यह तुरंत ही आकर्षित करता हैं। पुस्तक का कवर पेज इसके शीर्षक को प्रतिबिंबित करता है जिसमें एक मैला कुचैला लड़का जो कि दर्द में दिखता है, उगते सूरज की किरणों को दूर से देख रहा है। उसके इस देखने में बहुत आशा और सपने छुपे हुए हैं, जो उसको माँज कर अच्छा और सफल इंसान बनने की झलक दे रहा है। शीर्षक कहानी कुछ इंजीनियर विद्यार्थियों की है जो सिविल सर्विसेज की तैयारी कर रहे हैं और अचानक लातूर में आए भूकंप में सब कुछ त्याग कर सहायता के लिए पहुँच जाते हैं। कथा के मुख्य पात्र क्षितिज और इस विभीषिका में लगभग सब कुछ खो चुकी वंदना के बीच एक करुणामय प्यार पनपता है। बहुत ही सरल तरीके से लिखी गई यह कहानी मन को छू जाती है और एक सुखद अनुभूति पर खत्म होती है। 'परिस्थितियाँ' एक पीड़ामय कहानी है, एक वेदना का ऐसा चित्र हमारे सामने खींचती है जिससे जिंदगी में कभी ना कभी रूबरू होना पड़ता है। आदमी की आवश्यकताओं और संस्कारी विवशताओं के बीच एक तीखा द्वंद्व है इस कहानी में। इसमें डूबते हुए आप उस दर्द से आत्मसात हो जाते हैं जो किसी शव को रातभर भूखे-प्यासे रखने और दाह संस्कार तक इंतजार करने के बीच घटता है। 'ट्रेन बस और लड़की' आज के युवाओं के बीच होने वाली तमाम परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण है। लेखक आरंभ ही इस वाक्य से करता है 'ट्रेन, बस और लड़की, एक जाती है और दूसरी आती है, उसके लिए इतना टेंशन मत लो यार। एक मजाकिया अंदाज में कही गई है। यह परंतु कहानी में घटनाएँ मुख्य पात्र पर गंभीर असर डालती हैं। इसमें यह भाव अंतनिर्हित है कि किसी को प्रेम कर भूल जाना इतना आसान नहीं है। यह निश्चय ही आज के युवाओं के बीच बहुत लोकप्रिय होगी। 'प्रतिशोध' एक उत्कृष्ट रचना है जो लगभग अंत तक प्रेमचंद के अंदाज में लिखी गई है। घटनाकाल 1960 से लेकर अगले 25 वर्षों का दर्शाया गया है। कहानी के अंत में पाठक चौंक जाता है, वह देर तक नैतिकता-अनैतिकता के सवालों के बीच घिरा रहता है। इस कहानी में बहुत ही मोहक बिंब बने हैं और जो ग्रामीण जीवन की वास्तविक छवि दिखाते हैं। इस संग्रह की एक विशिष्ट कहानी है ''एक तेरा ही साथ'', जो एक नए दृष्टिकोण की तरफ ले जाती है। एक साधारण से युगल की यह कहानी है जिसमें पत्नी अपने पति को धोखा देकर किसी और से भी संबंध रखती है। कहानी के अंत में पति उसकी गलतियों को भूलकर उसको पुनः अपनाता है। पुरुष प्रधान समाज में नारी विमर्श संबंधित ये कहानी एक विशेष स्थान रखती है। लेखक ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है। प्रेम इतना व्यापक हो सकता है कि वह अपने अंदर सफेद और काले दोनों तरह के रंगों भावों को समा सकता है।

''दर्द माँजता है'' लेखक का साहित्य के आकाश पर एक सफल प्रयास है। कहीं से भी नहीं लगता है कि यह लेखक की पहली रचना है। हर तरीके से यह एक पठनीय पुस्तक है।

♦♦♦

सुकेश साहनी, रामेश्वर काम्बोज संपादित लघुकथाएँ मेरी पसंद-2

डॉ. शिवजी श्रीवास्तव

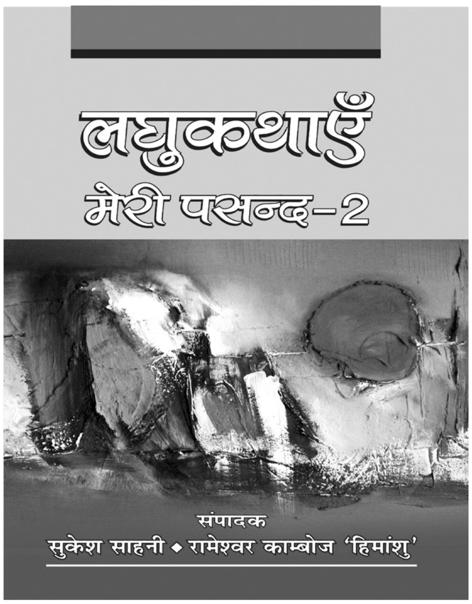

समीक्षित कृति
लघुकथाएँ मेरी पसंद-2
संपादक
सुकेश साहनी और रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
प्रकाशक
अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली
मूल्य: 240 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2018

सम्पर्क: 2, विवेक विहार, मैनपुरी (उ.प्र.)-205001, ई-मेल: shivji.sri@gmail.com

हिंदी में लघुकथा विधा एक सशक्त और लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है। प्रारंभ में लघुकथा को हल्के-फुल्के ढंग से लिया गया किन्तु कुछ प्रबुद्ध और समर्पित लघुकथाकारों तथा समीक्षकों के सतत प्रयास से वह एक गंभीर विधा के रूप में अपनी पहचान बनाने में सफल हुई तथा हिंदी साहित्य की केंद्रीय विधा बनने की ओर अग्रसर है। श्री रामेश्वर कम्बोज हिमांशु एवं श्री सुकेश साहनी उन्हीं समर्पित लघुकथाकारों में से हैं, जो किसी मौन साधक की भाँति लघुकथा के विकास के इसी अभियान में सन्नद्ध हैं। इन दोनों साहित्य साधकों ने अपने अभियान को गतिशील बनाने के लिये 'लघुकथा डॉट कॉम' की शुरूआत की। संभवत: हिंदी लघुकथा की यह सबसे पुरानी और महत्वपूर्ण वेबसाइट है, लघुकथा के स्तर और प्रामाणिकता के लिए यह इतिहास की एक महत्वपूर्ण ई-पत्रिका के रूप में स्थान बना चुकी है।

'लघुकथा डॉट कॉम' ने लघुकथा के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग भी किया, प्रत्येक अंक में किसी लेखक/प्रबुद्ध पाठक के पसंद की दो रचनाएँ उनकी समीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ प्रकाशित करने का कार्य किया।

लघुकथाएँ, मेरी पसंद-2 में पच्चीस लघुकथाकारों की पसंद की चालीस लघुकथाएँ संकलित हैं, यूँ तो लघुकथाएँ उनचास हैं; किन्तु कुछ लघुकथाएँ ऐसी हैं जिन्हें एक से अधिक लेखकों द्वारा पसंद किया गया, इसीलिए प्रकाशित रचनाएँ चालीस हैं। एक ही पुस्तक में महत्वपूर्ण चालीस रचनाओं एवं उन पर प्रबुद्धजनों की पसंदगी का कारण पढ़ना, अपने में एक अलग से आनंद का अनुभव है। नि:संदेह प्रत्येक लघुकथा अपने में उत्कृष्ट है और जीवन के विविध अनुभवों के द्वार खोलती है। 'लघुकथाएँ, मेरी पसंद-2' इसलिए ही एक महत्वपूर्ण कृति नहीं है कि उसमें एक स्थान पर श्रेष्ठ चालीस लघुकथाएँ एवं समीक्षात्मक टिप्पणियाँ हैं, अपितु इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि उन टिप्पणियों में लघुकथा की प्रवृतियाँ, लघुकथा के निकष एवं लघुकथा की परंपरा को भी खोजा जा सकता है। लघुकथा के गंभीर अध्येताओं, शोधकर्ताओं या लघुकथा सीखने वालों को इस पुस्तक में अपनी अपनी दृष्टि से पर्याप्त ज्ञानवर्धन की

सामग्री मिल सकती है।

लघुकथा क्या है? आदर्श लघुकथा के तत्व क्या हों? उसके निकष क्या हों?... ऐसे तमाम प्रश्नों के संकेतात्मक उत्तर विद्वानों को टिप्पणियों में यत्र-तत्र विद्यमान हैं।

हिंदी लघुकथा के विकास को संक्षिप्त में अत्यंत तार्किक ढंग से निशांतर की टिप्पणी में देखा जा सकता है... जैसे-जैसे संचार क्रांति विकास पाती जा रही है, लघु आकारीय रचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक होती जा रही हैं। यों तो हिंदी लघुकथा के विकास में अनेक मोड़ आए, जहाँ लघुकथा ने कुछ नया रूप लिया। नवें दशक के मध्य से लघुकथा ने एक बड़ा जोखिम उठाया था कि चार-पाँच या सात-आठ पंक्तियों के आकार से उसने कुछ विस्तार पाने के साथ व्यंग्यात्मकता की अनिवार्यता से पिंड छुड़ाकर स्वयं में संवेदनात्मकता को समेटना शुरू किया। यह जोखिम काफी फल रहा है और आज इसी कारण लघुकथा अन्य विधाओं के समक्ष ससम्मान खड़ी हो सकी है।'' (पृष्ठ 96)

निशांतर जी आगे लघुकथा के विकास यात्रा के सहयोगी कथाकारों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं-''इसी काल में लघुकथा को साहित्य-द्वार तक पहुँचने का शार्ट कट समझने वाले शनैः शनैः पलायन करते गए और गुरू गंभीर कथाकार जैसे डॉ. सतीश दुबे, रमेश बतरा, जगदीश कश्यप, बलराम अग्रवाल, डॉ. सतीशराज पुष्करण, विक्रम सोनी, सुकेश साहनी, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', डॉ. कमल चोपड़ा इत्यादि लोग क्रमशः गंभीर होते गए और इन लोगों ने एक से बढ़कर एक श्रेष्ठ लघुकथाएँ देकर लघुकथा को पर्याप्त समृद्धि प्रदान की।'' (पृष्ठ 96)

निशांतर जी का यह उद्धरण लघुकथा के महत्व, विकास और परंपरा की ओर संकेत कर रहा है, इसी प्रकार अन्य कथाकारों ने भी अपनी टिप्पणियों में लघुकथा की परंपरा को समृद्ध करने वाले कथाकारों का उल्लेख किया है। श्री मुकेश शर्मा ने अपने आलेख में लिखा है-''खलील जिब्रान, ओ. हेनरी, सआदत हसन मंटो, कार्ल सैंडबर्ग आदि ने जहाँ छोटी कथात्मक रचनाओं को अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दी, वहीं हिंदी में मुंशी प्रेमचंद, माधवराज सप्रे, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, विष्णु प्रभाकर आदि ने लघुकथा का मार्ग प्रशस्त किया।'' (पृष्ठ 48)

लघुकथा के इतिहास का संकेत और परंपरा का उल्लेख अन्य कथाकारों के आलेख में भी विद्यमान है। इतिहास और परंपरा के साथ ही लघुकथा के स्वरूप, उसके कथ्य एवं शिल्प पर भी सभी ने अपने अपने ढंग से विवेचन किया है, जिससे सामान्य पाठक के सम्मुख भी लघुकथा की एक मुकम्मल तस्वीर बन जाती है। लघुकथा-जैसा कि नाम से ही स्पष्ट किया है, दीपक मशाल के शब्दों में ''जिस तरह कविवर बिहारी लाल ने दोहों के द्वारा गागर में सागर को चरितार्थ किया, कबीर ने साखियों के रूप में जो बात कही है, जो बात गालिब और मीर के शे'र कहते हैं; वही बात आज के समय में लिखी गई बेहतरीन लघुकथाएँ कहती दिखती है।'' (पृष्ठ 35), लगभग यही बात डॉ. सुधा ओम ढींगरा भी कहती हैं-''कबीर की साखियों और उर्दू के शेअरों से, गागर में सागर भरती इन छोटी कहानियों का धीरे-धीरे रंग रूप बदला और लघुकथाओं के नाम से प्रचलित एवं प्रतिष्ठित हुई।'' (पृष्ठ 43) सर्वाधिक रोचक परिभाषा जया नर्गिस ने दी है-''मेरी नजर में लघुकथा 'नैनो बम' है जिसका उपयोग केवल साहित्यिक हित में संभव है।'' (पृष्ठ 33)

लघुकथा के कथ्य एवं शिल्प पर भी इस पुस्तक के आलेखों में स्पष्ट संकेत मिल जाते हैं। लघुकथा को परखने के मापदंड क्या हो इस संदर्भ में संपादक ने भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है कि-''जिस प्रकार पुराने निकर्ष पर साहित्य की अन्य विधाएँ आज नहीं परखी जा सकतीं, उसी प्रकार बरसों पुरानी (उस समय की रचनाओं को ध्यान में रखकर तय की गई) कसौटी पर आज की लघुकथा नहीं कसी जा सकती तथा संवेदित करने वाली विषयवस्तु ही रचना को लंबे समय तक जीवित रखती है।'' (पृष्ठ 5) स्पष्ट है कि संवेदना ही लघुकथा का मुख्य निकष होना चाहिए, पर कथ्य में संवेदना की अभिव्यक्ति हेतु आवश्यक भाषा-शिल्प की ओर भी कथाकारों ने चिंतन किया है। डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने लघुकथा और कहानी के मध्य शिल्पगत वैविध्य को प्रमुख माना है-''लघुकथा और कहानी के यथार्थ में शिल्प और शैली की जो लक्ष्मण रेखा होती है उसका उल्लंघन कई बार लघुकथा के स्वरूप को बिगाड़ देता है।'' (पृष्ठ 43) श्री सतीश राठी ने लघुकथा के शिल्प के विषय में लिखा है-''लघुकथा की रचना प्रक्रिया बड़ी कठिन होती है... लघुकथा तभी सफल हो पाती है जब वह पाठक को अपने भीतर तक पढ़ने के लिए विवश कर देती है। लघुकथा में सिर्फ शब्दों की ही भाषा नहीं होती, पंक्तियों के मध्य का खाली स्थान भी पाठक के भीतर बहुत गहरा प्रभाव बनाता है।'' (पृष्ठ 55)। लघुकथा के शिल्प की परोक्ष रूप से प्रत्येक कथाकार ने अपनी

पसंद की लघुकथाओं के संदर्भ में की है, जिनसे स्पष्ट होता है कि लघुकथा में प्रतीकात्मकता और व्यंजना का होना उसे प्रभावी बनाता है, साथ ही लघुकथा में शीर्षक, परिवेश और संवादों की अपनी महत्ता है, पर प्रमुख रूप से लघुकथा का उद्देश्य संवेदना की सघन अभिव्यक्ति ही है। कलेवर की लघुता का उल्लेख प्रत्येक रचनाकार ने किया है पर वह लघुता शब्दों/अवतरणों या पृष्ठों की किसी सीमा में आबद्ध नहीं है, जैसा कि आजकल की कई पत्रिकाओं/ई-पत्रिकाओं में लघुकथा के नियम में यह बंधन देखने को मिल रहा है जो किसी प्रकार औचित्यपूर्ण नहीं हो सकता।

पुस्तक में सम्मिलित चालीस लघुकथाओं में प्रत्येक कथा समान महत्व की है। कथाकारों ने अपनी पसंद से श्रेष्ठ लघुकथाओं का ही चयन किया है, फिर भी कुछ वैशिष्ट्य है जिसकी ओर ध्यानाकर्षण आवश्यक है। महत्वपूर्ण यह है कि इसमें खलील जिब्रान की कथा भी है, विष्णु प्रभाकर, चित्रा मुद्गल जैसे प्रसिद्ध कथाकारों की लघुकथाएँ भी हैं और लंबी कहानी लिखने के लिए प्रसिद्ध उदय प्रकाश की सबसे छोटी लघुकथा भी है। हरि मृदुल की पसंद ये कथा डेढ़ पंक्तियों की है, कथा यह है-

''वह डर गया है।

क्योंकि जहाँ उसे जाना है, वहाँ उसके पैरों के निशान पहले से बने हैं।''

अद्‌भुत और बहुत छोटी इस लघुकथा के महत्व को हरि मृदुल जी ने पूरे एक पृष्ठ में व्याख्यायित किया है, यही है लघुकथा की असली ताकत।

लघुकथा को समझने के इच्छुक तथा लघुकथा प्रेमियों के लिए निःसंदेह यह एक महत्वपूर्ण कृति है।

♦♦♦

नई दिल्ली में अनिल जोशी की पुस्तक 'प्रवासी लेखन: नयी जमीन - नया आसमान' का लोकार्पण

मॉरीशस में विश्व हिंदी

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

भारतीय विदेश मंत्री ने यह आशा व्यक्त की कि जब योग दिवस के लिए भारत 177 देशों का समर्थन हासिल कर सकता है, तो संयुक्त राष्ट्र की भाषा के लिए 129 देशों का समर्थन भी वह हासिल कर लेगा। उन्होंने इस बात पर संतोष व्यक्त किया कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हर शुक्रवार को हिंदी विश्व समाचार शुरू किए गए हैं।

ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का भव्य आयोजन गोस्वामी तुलसीदास नगर (मॉरीशस) में 18 से 20 अगस्त 2018 को किया गया। विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन मुख्य रूप से भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा किया जाता है, जिसमें इस बार मॉरीशस सरकार स्थानीय आयोजनकर्ता थी। हिंदी को भावनात्मक धरातल से उठाकर एक ठोस एवं व्यापक स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से और यह रेखांकित करने के उद्देश्य से कि हिंदी केवल साहित्य की भाषा ही नहीं, बल्कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को अंगीकार करके अग्रसर होने में सक्षम भाषा भी है, विश्व हिंदी सम्मेलनों की संकल्पना की गई। इस संकल्पना को आज से 43 वर्ष पूर्व 10-12 जनवरी, 1975 को नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में मूर्त रूप दिया गया। दूसरा विश्व हिंदी सम्मेलन 28 से 30 अगस्त 1976 को पोर्ट लुई मॉरीशस में और तीसरा विश्व हिंदी सम्मेलन 28 से 30 अक्टूबर 1983 को नई दिल्ली, भारत में तथा चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन पुनः पोर्ट लुई, मॉरीशस में 2 से 4 दिसंबर 1993 को आयोजित किया गया। इन चारों ही सम्मेलनों का आदर्श वाक्य था - 'वसुधैव कुटुंबकम' अर्थात पूरी धरती यानी वसुधा एक कुटुंब परिवार जैसी है। पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 4 से 8 अप्रैल 1996 को पोर्ट ऑफ स्पेन, त्रिनिदाद एंड टोबैगो में आयोजित किया गया, जिसका प्रमुख विषय था - 'अप्रवासी भारतीय और हिंदी'। छठा विश्व हिंदी सम्मेलन 14 से 18 सितंबर 1999 को लंदन, यू.के. में आयोजित किया गया, जिसका प्रमुख विषय था - 'हिंदी और भावी पीढ़ी'। सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन पारामारिबो, सूरीनाम में 6 से 9 जून 2003 को आयोजित किया गया, जिसका विषय था-'विश्व हिंदी - नई शताब्दी की चुनौतियाँ'। आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयार्क, अमेरिका में 13 से 15 जुलाई 2007 को आयोजित किया गया, जिसका विषय था - विश्व मंच पर हिंदी। नौवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 22 से 24 सितंबर 2012 को जोहाँसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में आयोजित किया गया, जिसका विषय था - 'भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ'। दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन भारत में 10-12 सितम्बर, 2015 आयोजित किया गया। इस सम्मेलन का मुख्य विषय था - 'हिंदी जगत विस्तार एवं संभावनाएँ'।

सम्पर्क: एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्री राम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007, मो. 09811036140, ई मेल drrvshrma@gmail.com

भारत के नागपुर से 10 जनवरी 1975 को शुरू हुई पहले विश्व हिंदी सम्मेलन की यह यात्रा अपने ग्यारहवें पड़ाव पर 18 अगस्त,2018 को तीसरी बार मॉरीशस पहुँची। इस सम्मेलन के लिए भारत और मॉरीशस के शीर्ष नेतृत्व ने अपनी शुभकामनाएँ दी। भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने शुभकामना संदेश में कहा कि मॉरीशस में होने वाला यह सम्मेलन हिंदी भाषा के माध्यम से भारत और मॉरीशस की साँझी संस्कृति की सजीव झाँकी प्रस्तुत करेगा तथा दोनों देशों के जन आधारित सदियों पुराने संबंधों को और अधिक प्रगाढ़ बनाने में सहायक सिद्ध होगा। मॉरीशस के प्रधानमंत्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ ने अपने संदेश में कहा कि यह सम्मेलन भारतीय प्रवासी समुदाय को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से परिभाषित अपनी अस्मिता और भाषा के प्रति आत्मीयता ज्ञापित करने का अवसर प्रदान करेगा।

ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन की तैयारियाँ जब अपने अंतिम चरण पर थीं और सम्मेलन में प्रतिभागिता करने के लिए विश्व भर के प्रतिभागी उत्साह से भर कर चलने को तैयार हो रहे थे, उसी समय एक दुखद समाचार ने समस्त हिंदी जगत को स्तब्ध कर दिया। वह समाचार था – भारत के पूर्व प्रधानमंत्री, हिंदी प्रेमी, भारत रत्न श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी का देहावसान। ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन पर संकट के बादल मंडराने लगे। इस बीच यह निर्णय लिया गया कि माननीय अटल जी जैसे उत्कृष्ट हिंदी प्रेमी को यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी कि 3 वर्ष से जिस सम्मेलन की तैयारियाँ की जा रही थी, उस सम्मेलन को अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मॉरीशस में आयोजित किया जाए। भारत की विदेश मंत्री माननीय सुषमा स्वराज जी ने अपने कार्यक्रम में बदलाव करते हुए स्वर्गीय अटल बिहारी वाजपेयी जी की अंतिम यात्रा में भाग लेने के पश्चात मॉरीशस जाने का निर्णय लिया।

18 अगस्त 2018 को पूर्वाह्न 10:00 बजे स्वामी विवेकानंद अंतरराष्ट्रीय सभागार में ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्घाटन समारोह प्रारंभ हुआ। अपने उद्घाटन भाषण में भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने कहा कि इस सम्मेलन में दो भाव एक साथ उभर रहे हैं। पहला शोक का भाव और दूसरा संतोष का भाव। अटल जी के निधन पर शोक की छाया इस सम्मेलन पर है, किंतु दूसरा संतोष का भाव भी है कि समूचा हिंदी विश्व आज अटल जी को श्रद्धांजलि देने के लिए एकत्र है। इसीलिए उद्घाटन सत्र के बाद श्रद्धांजलि सत्र रखा गया है।

अपने वक्तव्य में माननीय विदेश मंत्री ने कहा कि दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन की जिम्मेदारी मिलने पर उन्होंने पहले के विश्व हिंदी सम्मेलनों की समीक्षा की, तो पाया कि सभी सम्मेलन साहित्य की विधाओं पर केंद्रित थे। इसलिए उन्होंने भोपाल में संपन्न दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन का मुख्य विषय भाषा को बनाया। विचार यह था कि भाषा और बोली जहाँ बची हुई है, उसे कैसे बढ़ाया जाए और जहाँ लुप्त हो रही है, वहाँ उसे कैसे

बचाया जाए। गिरमिटिया देशों में लुप्त हो रही भाषा को बचाने की जिम्मेदारी भारत की है।

विश्व हिंदी सम्मेलन में दो प्रस्ताव पारित किए जाते रहे हैं। एक यह कि विश्व हिंदी सचिवालय का मॉरीशस में भवन हो। प्रस्ताव पारित हो गया है और इसी वर्ष विश्व हिंदी सचिवालय भवन का उद्घाटन भारत के महामहिम राष्ट्रपति रामनाथ कोविद जी के हाथों संपन्न हो चुका है। दूसरा प्रस्ताव हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाना रहा है। उसमें मुख्य समस्या यह है कि समर्थक देशों को संबंधित व्यय वहन करना होगा, यदि यह व्यय भारत को वहन करना होता, तो 400 करोड़ रुपए देकर भी हम उसे हासिल कर लेते।''

भारतीय विदेश मंत्री ने यह आशा व्यक्त की कि जब योग दिवस के लिए भारत 177 देशों का समर्थन हासिल कर सकता है, तो संयुक्त राष्ट्र की भाषा के लिए 129 देशों का समर्थन भी वह हासिल कर लेगा। उन्होंने इस बात पर संतोष व्यक्त किया कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हर शुक्रवार को हिंदी विश्व समाचार शुरू किए गए हैं। उन्होंने सभी प्रतिभागियों से आग्रह किया कि वे इन समाचारों को अधिक से अधिक सुनें, जिससे इसकी लोकप्रियता के आधार पर इसे दैनिक करने की राह आसान हो। श्रीमती स्वराज ने कहा कि भाषा के बाद हमने सोचा कि अगला पड़ाव संस्कृति पर ले जाया जाए। इसीलिए ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का मुख्य विषय 'हिंदी विश्व और भारतीय संस्कृति' रखा गया।

मॉरीशस के प्रधानमंत्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ ने अपनी बात इस अफसोस के साथ शुरू की कि वे भली-भाँति हिंदी नहीं बोल पाते हैं, किंतु उन्होंने अपनी पत्नी से कहा है कि संक्रांति के दिन खिचड़ी ही खाएँगे क्योंकि भारत में भी संक्रांति के दिन खिचड़ी खाई जाती है। अपनी संस्कृति को बचाने की छटपटाहट उनमें दिखाई दी। उद्घाटन सत्र में ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन के 'लोगो' पर बनी एनिमेशन फिल्म में दिखाया गया कि मॉरीशस का राष्ट्रीय पक्षी डोडो जब डूबने लगता है, तो भारत का राष्ट्रीय पक्षी मोर आकर उसे बचाता है, फिर दोनों नृत्य करते हैं।

उद्घाटन सत्र के आरंभ में ही भारत के दिवंगत प्रधानमंत्री भारत रत्न अटल बिहारी वाजपेयी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए दो मिनट का मौन रखा गया। उसके बाद मॉरीशस और भारत का राष्ट्रगान हुआ। भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज तथा मॉरीशस की शिक्षामंत्री लीला देवी दुकन लछुमन ने दीप जलाकर कार्यक्रम का उद्घाटन किया। केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के विदेशी विद्यार्थियों ने सरस्वती वंदना की। उसके बाद महात्मा गाँधी संस्थान, मॉरीशस के विद्यार्थियों ने हिंदी

गान प्रस्तुत किया। मॉरीशस की शिक्षा मंत्री ने स्वागत भाषण किया। मॉरीशस के प्रधानमंत्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ ने विश्व हिंदी सम्मेलन पर दो डाक टिकट जारी किए। उन्होंने सम्मेलन स्मारिका का भी लोकार्पण किया। गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा ने विश्व हिंदी सम्मेलन पर केंद्रित 'गगनांचल' के विशेषांक का, पश्चिम बंगाल के राज्यपाल एवं कवि केसरीनाथ त्रिपाठी ने 'दुर्गा' पत्रिका का, भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने 'राजभाषा भारती' पत्रिका, मॉरीशस की शिक्षा मंत्री लीला देवी दुकन लछुमन ने विश्व हिंदी सचिवालय की पत्रिका 'हिंदी साहित्य' का, भारत के विदेश राज्यमंत्री एम.जे. अकबर ने अभिमन्यु अनत की पुस्तक 'प्रिया' का और भारत के विदेश राज्यमंत्री जनरल वी.के. सिंह ने 'भोपाल से मॉरीशस' पुस्तक का लोकार्पण किया। उद्घाटन समारोह का संचालन दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की प्रोफेसर कुमुद शर्मा और मॉरीशस की माधुरी रामधारी ने किया। धन्यवाद ज्ञापन भारत के विदेश राज्यमंत्री एम.जे. अकबर ने किया।

उद्घाटन सत्र के पश्चात वाजपेयी जी की स्मृति में श्रद्धांजलि सत्र में बोलते हुए पश्चिम बंगाल के राज्यपाल और हिंदी के वरिष्ठ कवि केसरीनाथ त्रिपाठी ने कहा कि अटल बिहारी वाजपेयी के निधन से शब्द निशब्द हो गए हैं। वाणी मूक हो गई है। मॉरीशस के पूर्व प्रधानमंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने कहा–''मैं अपने और अपने देश की ओर से अपने करीबी दोस्त और सहयोगी के लिए शोक व्यक्त करता हूँ। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा है। अटल जी दोनों देशों के सांस्कृतिक संबंधों को अटल बंधन में बांधने के लिए प्रयत्नशील रहे। चीन में हिंदी के पुरोधा जियाँग चीग खेइना ने कहा–''मैं चीन में हिंदी का सैनिक हूँ। मैं अटल जी का अनुवादक था। वे भारत और चीन के बीच मधुर संबंध बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे।'' गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा ने अटल जी की महानता के उदाहरण प्रस्तुत किए। तजाकिस्तान के हिंदी सेवी जावेद ने कहा कि हम हिंदी के महायज्ञ में आहुति देने आए हैं। पोर्ट ऑफ स्पेन के रामप्रसाद परशुराम ने कहा कि जो देश-सेवा में जीवन बिताते हैं, वे मरकर भी अमर हो जाते हैं। अमेरिका के प्रोफेसर सुरेंद्र गंभीर ने कहा कि अटल जी की कविता बचपन से गुनगुनाता रहा हूँ। उनकी विनोदपूर्ण प्रतिक्रिया के कई संस्मरण हमारी चेतना में आज भी मौजूद हैं। सांसद के.सी. त्यागी ने कहा कि अटल जी दल के नहीं दिल के नेता थे। रूस की डॉ अन्ना चेर्नोकोवा ने कहा कि प्रधानमंत्री तो सभी बन सकते हैं, लेकिन कविताएँ केवल अच्छे लोग ही लिखते हैं। दक्षिण कोरिया की डॉ. युंगली, जापान के प्रोफेसर मचिदा, मॉरीशस की हिंदी सेवी डॉ. विनोद बाला अरुण आदि ने भी अटल जी को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। सत्र का संचालन कवि अशोक चक्रधर ने किया तथा अंत में गजेंद्र सोलंकी ने अपनी कविता के माध्यम से अटल जी को काव्यांजलि दी।

मॉरीशस के प्रधानमंत्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ ने श्रद्धांजलि सत्र में घोषणा की कि मॉरीशस के साइबर टावर को अब अटल बिहारी वाजपेयी टावर के नाम से जाना जाएगा। उन्होंने कहा कि अटल जी के निधन से हिंदी जगत का अनमोल हीरा खो गया है। भारत माता ने एक वीर राजनेता, बुद्धिमान कर्तव्यनिष्ठ हिंदी सेवी खो दिया है। उन्होंने वाजपेयी जी के निधन पर शोक व्यक्त

करते हुए कहा कि उनके देश ने अपने राष्ट्रीय झंडे और भारत के तिरंगे को आधा झुका दिया है।

दोपहर के भोजन के पश्चात चार समानांतर सत्र अभिमन्यु अनत मुख्य सभागार, गोपालदास नीरज कक्ष, भानुमति नागदान तथा सुरुज प्रसाद मंगर 'भगत' जैसे हिंदी सेवियों के नाम पर रखे गए कक्षों में आयोजित किए गए। इन सत्रों के विषय थे – भाषा और लोक संस्कृति के अंतर्संबंध, प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी सहित भारतीय भाषाओं का विकास, हिंदी शिक्षण में भारतीय संस्कृति तथा हिंदी साहित्य में संस्कृति चिंतन।। माननीय अटल बिहारी वाजपेयी जी के निधन के कारण शाम को भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा आयोजित किया जाने वाला सांस्कृतिक कार्यक्रम रद्द कर दिया गया।

सम्मेलन के दूसरे दिन रविवार 19 अगस्त 2018 को भी चार समानांतर सत्र आयोजित किए गए। इन सत्रों के विषय थे– फिल्मों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का संरक्षण, संचार माध्यम और भारतीय संस्कृति, प्रवासी संसार: भाषा और संस्कृति, हिंदी बाल साहित्य और भारतीय संस्कृति। दूसरे दिन भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने महात्मा गाँधी संस्थान में मॉरीशस की शिक्षा मंत्री लीला देवी दुकन लछुमन और कला एवं संस्कृति मंत्री पृथ्वीराज सिंह रुपन की उपस्थिति में पाणिनी भाषा प्रयोगशाला का उद्घाटन किया। इस प्रयोगशाला की स्थापना विदेश मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से की गई है, जिसमें 34 कंप्यूटरों के साथ-साथ भाषा प्रयोगशाला से संबंधित अन्य संसाधन भी प्रदान किए गए हैं।

8 सत्रों में 2 दिन तक चली इन परिचर्चाओं के पश्चात आयोजकों की तरफ से सभी प्रतिभागियों को आप्रवासी घाट, महात्मा गाँधी संस्थान और विश्व हिंदी सचिवालय का भ्रमण करवाया गया। आप्रवासी घाट पर 1835 से 1912 के बीच अंग्रेजों द्वारा उत्तर भारत के सहस्त्रों मजदूरों को उतारा गया था, जिसे देखकर सभी रोमांचित हो उठे। वहाँ स्थित संग्रहालय में अत्यंत महत्त्वपूर्ण सामग्री सहेजकर रखी हुई है। इसी प्रकार महात्मा गाँधी संस्थान में तत्कालीन गिरमिटिया मजदूरों के पूरे रिकॉर्ड संभाल कर रखे गए हैं। वहाँ उनके रहन सहन, पढ़ाई, बर्तनों, वस्त्रों, पुस्तकों आदि को बड़े यत्न के साथ संभाल कर रखा गया है। विश्व हिंदी सचिवालय के नए भवन की भव्यता देखने योग्य थी। वहाँ बनाए गए पुस्तकालय में अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को संगृहीत किया गया है। वहाँ से सभी प्रतिभागियों को पुन: आयोजन स्थल तुलसीदास नगर में लाया गया और भोजन के उपरांत भारत और मॉरीशस के विभिन्न कवियों के द्वारा कविताओं के माध्यम से स्वर्गीय अटल जी को काव्यांजलि दी गई। इसमें डॉ. कुंवर बेचैन, सरिता शर्मा, सुरेश अवस्थी तथा भारत और मॉरीशस के विभिन्न कवियों का काव्यपाठ हुआ, जिस का संचालन गजेंद्र सोलंकी ने किया।

ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का एक अन्य आकर्षण थी – प्रवेश द्वार के दोनों ओर लगी विभिन्न प्रदर्शनियाँ। यहाँ मॉरीशस और भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार और उसे समृद्ध बनाने की दिशा में संलग्न प्रमुख सरकारी संगठनों और हिंदी के प्रमुख प्रकाशकों की प्रवासी साहित्य और मॉरीशस से संबंधित पुस्तकें हिंदी की अनुपम छटा प्रदर्शित कर रही थी। विश्व हिंदी सम्मेलन, महात्मा गाँधी संस्थान, सीडैक, विकिपीडिया, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, साहित्य अकादमी, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय आदि द्वारा लगाई गई 30 से अधिक प्रदर्शनियाँ जनसमूह के आकर्षण का केंद्र बनी रही। ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन में इस बार 'हिंदी और भारतीय संस्कृति' विषय पर संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार के निमंत्रण पर भारत से गए चार चित्रकारों ने निरंतर 3 दिनों तक 16 फुट लंबी अनूठी कलाकृति का निर्माण किया। इन चित्रकारों डॉ. स्नेह सुधा नवल, सुनील दत्त ममगाई, रूपचंद और हर्षवर्धन आर्य ने मिलकर कलााकृति को भव्य रूप दिया।

इस कलाकृति में भारतीय संस्कृति, हिंदी भाषा का गौरव, विविधता में एकता और भारत मॉरीशस संबंधों को रंगों के माध्यम से उकेरा।

सम्मेलन के तीसरे और अंतिम दिन आठों सत्रों के संयोजकों के द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें सत्रों में प्राप्त अनुशंसाएँ भी शामिल की गईं। तत्पश्चात पूरे विश्व में हिंदी का प्रचार-प्रसार कर रहे हिंदी सेवियों को विश्व हिंदी सम्मान से अलंकृत किया गया। 20 अगस्त को सम्मेलन के अंतिम चरण में विश्व भर से पहुँचे हिंदी प्रेमी एक दूसरे को नम आँखों से विदा दे रहे थे और अगले सम्मेलन में पुन: मिलने की आशा जगा रहे थे। ♦♦♦

वह कौन थी

हरीश नवल

मैं निर्धारित समय से पूर्व पहुँच गया था.. कारण, मेरी ट्रेन का सही वक्त पर पहुँचना था, तिस पर स्टेशन से लक्ष्मी नारायण मंदिर के रास्ते में मेरे महानगर जैसा भव्य ट्रेफिक भी नहीं था ...छोटे शहर में दूरी के मापक -मान के गणित से मंदिर और स्टेशन की दूरी मुझे बहुत कम लगी थी जबकि कहा गया था कि बहुत दूर है ..

...बाहर जूते उतार कर मैंने ऐसी जगह रख दिए जहाँ से मैं उन्हें सुगमता से निहार सकूँ ..भीतर मंदिर में चाँदनी बिछ चुकी थी, मंच सुसज्जित हो रहा था, तख़्त पर कालीन शोभित था जिस पर दो युवक दिवंगत का बड़ा सा चित्र टिकाने हेतु अरुचि से संघर्षरत थे ..

...तख़्त के नीचे चित्र के समक्ष फूलों की टोकरी रखते हुए एक लड़का उनकी समस्त सुगंध को अपनी नासिकाओं में ठूँस ठूँस कर भरने में जुटा हुआ था...अभी कोई परिचित दृष्टिगत नहीं हुआ था ...मैं पानी की टेबल की ओर बढ़ कर बर्फ में लगी बोतलों में से सबसे ठंडी का अन्वेषण कर अपनी जलती प्यास को बुझा कर बचे पानी को सहेजने में सफल हो सका था ...मैंने दीवार के साथ लगी कुर्सियों में एक कुर्सी ऐसी चुन ली जो पंखे के ठीक नीचे थी और निकास द्वार के समीप थी ताकि बोरियत की वृद्धि होने पर तुरंत त्राण पाया जा सके ...

..... इक्का दुक्का लोग पहुँच कर पानी वाले से चाय के मिलन की राह पूछने लगे थे ...जिसका विरह वे सह नहीं पा रहे थे...

...तभी बाहर तीन चार कारें रुकीं और दिवंगत के सगे सम्बंधी उतरे... महिलाएँ स्वजाँच से जाँचने लगीं कि जंच रहीं हैं अथवा नहीं ...पुरुषों की कंघियाँ खेती जोतने लगीं ...एक एक कर वे सब भीतर आए ...तनिक शोक का पाउडर चेहरे पर छिड़क कर रंगकर्म में प्रेरित होने लगे ...मैं दिवंगत के एक बेटे को पहचानता था ...उसके पास हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया ...क्या डायलॉग बोलने थे याद नहीं आ रहे थे ...अच्छा हुआ कि 'बेटे' को अपने याद थे, मायूसी के स्वर फूटे ''अरे। आप इतनी दूर से आए ...आपको तो बाबूजी बहुत मानते थे, मृत्यु से पहले कई बार उन्होंने आपके बारे में पूछा ...वो आपको मिस करते थे और अब हम उनको मिस कर रहे हैं ...पानी लिया आपने?''

मेरा अभिनेता जागरण अभियान में था ...वाणी में भर्राहट भर कर बोला ''भाई साहब ख़बर सुन कर रहा नहीं गया ...ना खाने को जी करे ना पीने को ...ऐसे इंसान अब रहे ही कितने ....देवता थे देवता...''

'भाई साहब 'ने मुझे बाँहों में भर लिया और बोले ''देवता भी ऐसे कहाँ होते हैं ...हमारे लिए तो बाबूजी ईश्वर थे ...आप ईश्वर को माने या ना माने पर वो आपको बहुत मानते थे, मृत्यु से पहले उन्होंने...''

आगे वे बोल न पाए और आह भर कर मुझे नागपाश से मुक्त कर दिया ... मैं अपनी कुर्सी की और लपका जहाँ मैंने अपना थैला रख कर उसे रिजर्व किया हुआ था ...जाते जाते मेरे कानों ने सुना और आँखों ने देखा भाई साहब धीमे से किसी से पूछ रहे थे कि 'यह कौन था जो मुझसे भी ज्यादा दुखी है ...मैं तो इसे जानता तक नहीं।'

धीरे धीरे सभा स्थल भर गया... पंडित जी ने माईक थामा...पड़ौस में बैठे ने दूसरे को कहा, ''यार वही सुनने को मिलेगा जो पंडित जी बरसों से बोल रहे हैं बस नाम बदल देते हैं ...सेहरा पढ़ते हैं बससस''

किसी तरह से एक घंटे की निर्धारित अवधि बीती, लगा मानो कई घंटे बीत गए ...पगड़ी की रस्म में बाबूजी के तीनों बेटे और चारों पोते हीरो बने ...बड़े भैया के असली और बड़ी पगड़ी बंधी...उन्हें बाबूजी की गद्दी प्रदान की गई ...शगुन दिए गए ...गरुड़पाठ का निर्देश कर पंडित जी ने गायत्री मंत्र पढ़वा कर सगों को बाहर पंक्तिबद्ध खड़ा होकर सबको विदाई करने का संकेत दिया ...आगंतुक अपना अपना चेहरा दिखाने और उस पर यतीमियत लादने की होड़ में दिखे ...जो नहीं दिखा पाए ...दोबारा लाइन में लग गए ...मैं बुरी तरह थक चुका था ...चाचा जी ने मेरी टिकटें बुक न करी होतीं और टी ए, डी ए देने का वायदा न किया होता, मैं न आता... वे भले रहे जो समापन के समय आए और तुरंत 'मुँहदिखाई' कर सके ...

...''समापन के बाद का समां जायकेदार था...भोज था अनेक व्यंजनों से पूरित ...

कहकहों के बीच भोजन हुआ या भोजन बीच कहकहे हुए बताना कठिन है ...

....अभी लोग रूखस्त भी नहीं हुए थे कि शकुनि का जादू चल गया ...बाबूजी की सम्पत्ति के दावों की भरमार होने लगी...स्वर्गवासी बाबूजी को नारकीय विशेषणों से विभूषित किया जाने लगा भाइयों, भाभियों, ननदो, दोईयों के महाभारत के खेल का आनंद मैंने भी लिया ...जम कर झगड़ा हुआ ...हाथ पैर भी चले...

...मंदिर के भीतर बाबूजी की तस्वीर पददलित हो गई थी...देवताओं ने मुख छिपा लिए थे....तभी एक लाश गिरी...हलचल मची...'कौन थी' 'कौन है' का शोर मचा...कोई पहचान न पा रहा था ...हठात् विवेक जागता दिखाई दे गया...और लाश का नाम बता गया...'वह संवेदना थी ।'

सम्पर्क: 65, साक्षरा अपार्टमेंटस, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता
....
....
....
....

पत्रिका भिजवाने का पता
....
....
....
....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष................	एक वर्ष ₹ 500 (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200 (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10% पुस्तक विक्रेता 25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.. दिनांक ....

रु./US$ .... बैंक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं:
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....

नाम..

पद..

दिनांक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 40 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228 23378662
उप-महानिदेशक (पी)	:	23370784
वरिष्ट कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
भारतीय सांस्कृति केंद्र अनुभाग	:	23379274
अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3388, 3347

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

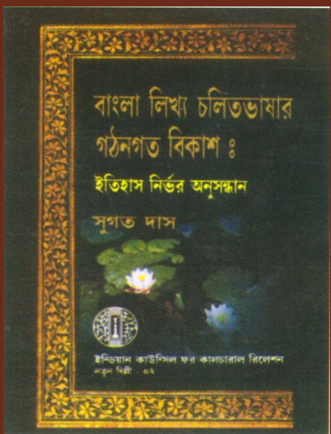

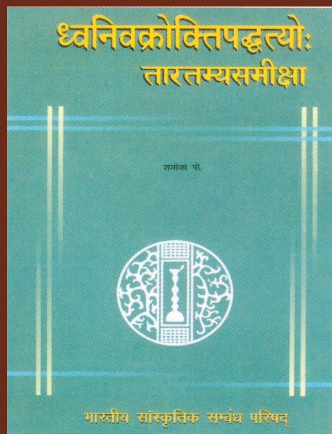

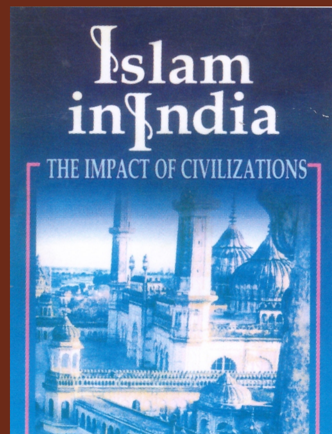

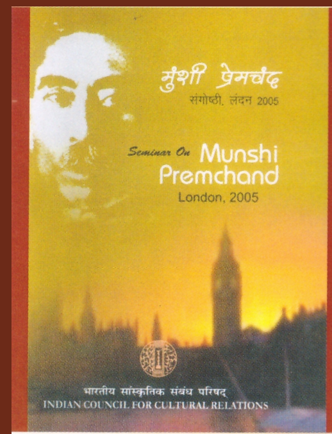

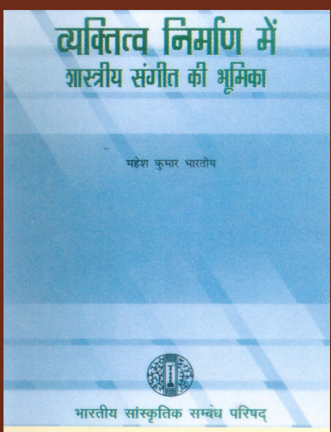

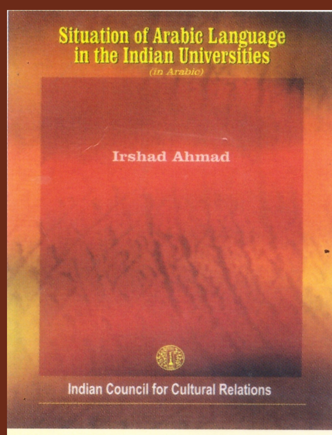

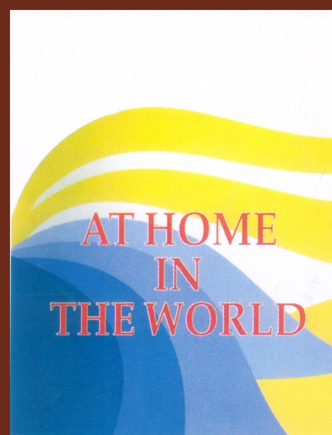

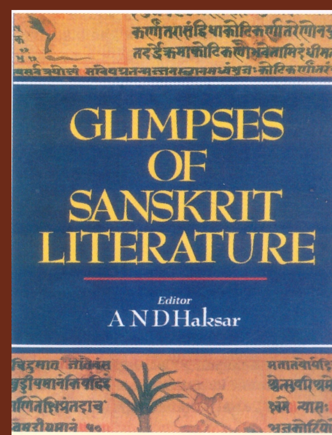

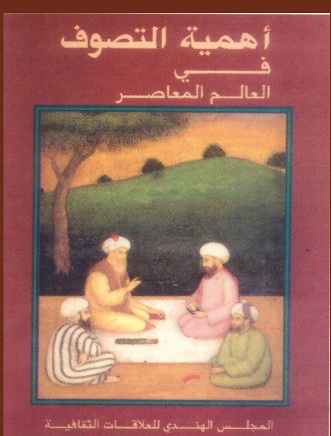

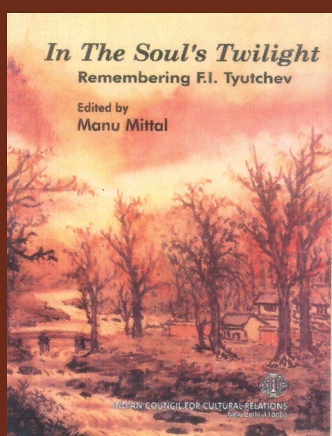

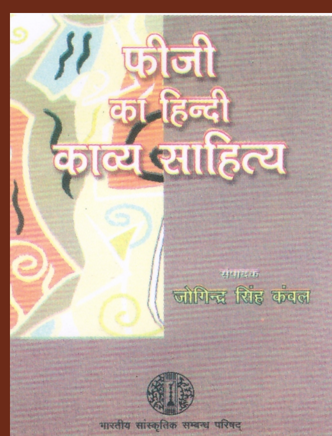

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccrindia.net